धृति क्षमा दमोस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 33 • अंक 2 • अप्रैल-जून 2026

मूल्य रु. 25/-

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्ति नाशनम्॥

वर्ष : 33 | अप्रैल-जून 2026 | अंक : 2

भजन

जन की विपति सदा हरि टारी।
राखि लयो प्रहलाद भक्त कहँ संकट सकल सँघारी।
ध्रुव अबोध कहँ दयो अटल पद बन में करि रखवारी॥
अम्बरीस को मान बढ़ायो दुरबासहिं ललकारी।
ग्रह का मान मारि गज राख्यो चक्र सुदरसन धारी॥
दई दीन विप्रहिं तिलोक निधि निज निरबाहु बिसारी।
द्रुपद सुता की लाज बचाई दइ कौरव पद भारी॥
भक्तराज नरसी की हुंडी आपुहि जाय सकारी।
रामसरन लखि छोभ जना को स्वयम् बने पिसनहारी॥

भजन संख्या 17

– स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोनः 01334-311821
मोबाइलः 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमना सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइलः 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन मैंशन-1,
इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेलः rcgupta1018@gmail.com
मोबाइलः 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5
4.	भजन		6–7
5.	गीता विमर्श – धारावाहिक	स्वामी रामानन्द जी	8–11
6.	गुरु वाणी – धारावाहिक		12
7.	Letters to Seekers – धारावाहिक		13–14
8.	भागवत के मोती – धारावाहिक		15
9.	दिनांक 19.4.2026 की कार्यकारिणी की बैठक का विवरण		16–17
10.	दिनांक 20.4.2026 की वार्षिक साधारण सभा का विवरण		17
11.	श्री गुरुदेव निर्वाण दिवस साधना शिविर-2026 का विवरण		18–23
12.	ऐसे थे हमारे पूज्य गुरुदेव	– कविराज नरेन्द्र कुमार	24–28
13.	प्रेम और शरणागति – ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका		29–30
14.	प्रभु-पद-रत भव-बिरत नित बन्दौं भक्त उदार (भक्त महेश मण्डल)		31–34
15.	जो चाहौ हरि मिलन कौ – नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार		35–36
16.	राम नाम की महिमा (विनय पत्रिका - पद संख्या 67)		36
17.	शोक समाचार		36
18.	दानदाताओं की सूची		37–38
19.	श्री मद्भागवत कथा (ज्ञान यज्ञ)-2026 – सूचना		38
20.	शुभ समाचार		38
21.	श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, दिगोली – सूचना		39
22.	श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, हरिद्वार – सूचना		39
23.	श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य		40

सम्पादकीय

सभी साधक भाई बहनों को सम्पादक मण्डल का सप्रेम राम राम।

इस वर्ष का द्वितीय अंक भी डिजिटल परिवेश में आपके समक्ष प्रस्तुत है। सुधी साधकों को इस निर्णय से यदि असुविधा हुई हो तो हम क्षमा प्रार्थी हैं। बदलती परिस्थितियों के अनुसार बहुत सी वस्तुओं के रूप बदल जाया करते हैं जिनको हमें स्वीकार करना ही होता है। जिन साधकों को पेपर बैक में ही पढ़ने की आदत है वे यदि साधना धाम जायें तो वहाँ के प्रबन्धक से कहकर इसका प्रिंट निकलवा सकते हैं।

आदि गुरु शंकराचार्य जी ने गुर्वष्टकम् में लिखा है –

'देश विदेश में सम्मान मिलता हो, अपने देश में जिनका नित्य जय-जयकार से स्वागत किया जाता हो और जो सदाचार-पालन में भी अनन्य स्थान रखता हो, यदि उसका भी मन गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न हो तो इन सभी सद्‌गुणों का कोई महत्व नहीं होता है।'

सच ही कहा गया है – गुरु का स्थान भगवान् से भी अधिक होता है क्योंकि भगवान् ने तो हमें विभिन्न अंगों से भरपूर शरीर दिया है, धन सम्पत्ति दी है, रहने का स्थान दिया है और अन्य सभी साधन दिये हैं किन्तु उनका सदुपयोग कैसे करना है, उसकी विधि तो गुरु ही बताते हैं। गुरु ने ही हमें आध्यात्मिक शक्ति का विकास करना सिखाया है, ध्यान के माध्यम से विवेक और आत्म-ज्ञान की जाग्रति करना सिखाया है। गुरु ने हमें सुबह शाम ध्यान करने का निर्देश दिया है जिससे हम भगवान् से जुड़ सकें। जब भी हम दुविधा में होते हैं कि क्या करें और क्या न करें तो भगवान् से जुड़ जायें। उसके बाद जो भी करेंगे वो हमारे लिये शुभ ही होगा, जैसे महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् को ही चुना था तो युद्ध के समय उत्पन्न हुई दुविधा का समाधान भगवान् ने ही किया था।

यह गुरु महाराज की कृपा ही है कि हमें हरिद्वार में साधना धाम जैसे स्थान की प्राप्ति हो गई। उसमें भी लगातार सुविधाओं की वृद्धि होती जा रही है। इस वर्ष सौर ऊर्जा संयन्त्र की स्थापना भी हो गई है जिससे बिजली के खर्च में पर्याप्त कमी आई है। इसी प्रकार दिगोली तपस्थली में लगातार सुधार हो रहा है।

श्री गुरु महाराज की कृपा इसी प्रकार अनवरत बरसती रहे।

जय गुरुदेव।

अध्यक्ष **सचिव/सम्पादक**

भजन

मुझे ऐसी लगन लगा दो प्रभु
मैं प्रतिपल आप को भूलूँ ना।
मेरे कर्म सभी हो तेरे लिए
मेरा धर्म सभी हो तेरे लिए।
मुझे हर पल तेरा ही ध्यान रहे
मैं प्रतिपल आप को भूलूँ ना।

मैं दीन अधम अति पापी हूँ
मैं जैसा हूँ प्रभु तेरा हूँ।
मुझे अपने गले लगा लो प्रभु
मैं प्रतिपल आपको भूलूँ ना।
श्वासों में नाम समा जाये
और रोम-रोम में रम जाये।

मेरे मन में ज्ञान की ज्योति जगे
मैं प्रतिपल आप को भूलूँ ना।
मुझे ऐसी लगन लगा दो प्रभु
मैं प्रतिपल आप को भूलूँ ना।

– बहन कान्ति सिंह

जब तक है ये ज़िन्दगी

जब तक है ये ज़िन्दगी फुरसत ना मिलेगी काम से।
ऐसा कोई समय निकालो प्रीत बने श्री राम से।
श्री राम जय राम जय जय राम, जय राम जय राम जय जय राम।।
राम नाम के दो अक्षर की महिमा है अति भारी।
राम कृपा जिसके ऊपर हो सुखी रहे संसारी।
राम नाम नित बोल तू बंदे जीवन बिता आराम से।
ऐसा कोई समय निकालो प्रीत बने श्री राम से।
श्री राम जय राम जय जय राम, जय राम जय राम जय जय राम।।
पाँच पहर धन पाने खातिर यहाँ वहाँ तू खोये।
तीन पहर तू तान के चादर गहरी नींद में सोये।
एक पहर तो सुमिरन कर ले दाता का विश्राम से।
ऐसा कोई समय निकालो प्रीत बने श्री राम से।
श्री राम जय राम जय जय राम, जय राम जय राम जय जय राम।।
बचपन बीता खेल खेल में और जवानी राग रंग।
सारा जीवन बीत गया पर किया नहीं संतों का संग।
राम रंग में रंग जा अब तो सेवा कर निष्काम से।
ऐसा कोई समय निकालो प्रीत बने श्री राम से।
श्री राम जय राम जय जय राम, जय राम जय राम जय जय राम।।
एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध।
पत्थर भी सागर में तर गए इसी राम के नाम से।
ऐसा कोई समय निकालो प्रीत बने श्री राम से।
श्री राम जय राम जय जय राम, जय राम जय राम जय जय राम।।

आदत बुरी सुधार लो

आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।
मन की तरङ्ग मार लो बस हो गया भजन।।

1. आये कहाँ से और अब जाना कहाँ तुम्हें, सोचो
आये कहाँ से और अब जाना कहाँ तुम्हें,
इतना ज़रा विचार लो बस हो गया भजन।।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।

2. दृष्टि में तेरी दोष है दुनिया निहारते।
समता का अंजन डाल लो बस हो गया भजन।।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।

3. नेकी सभी के साथ में जितनी बने करो।
मत सिर बदी का भार लो बस हो गया भजन।।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।

4. कटुता मनों से त्याग दो मीठे वचन कहो।
वाणी का स्वर सुधार लो बस हो गया भजन।।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।

5. अच्छे हों या बुरे तुम्हें कर्मों के फल दिये, प्रभु ने
हँस कर सभी गुज़ार दो बस हो गया भजन।।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।

मेरे दाता के दरबार में

मेरे दाता के दरबार में है सब ही का खाता।
जितना जिसके भाग्य में होता उतना ही मिल पाता।।

इस खाते में जो भी अपनी पूँजी जमा कराता।
मानुष तन की यही कमाई जन्म-जन्म तक खाता।।
मानव देखो बने देवता ऊँचे पद को पाता।
मेरे दाता के दरबार में है सब ही का खाता।।

पूँजी सेवा और भजन की जमा कराते रहना।
ये ही तेरे काम आयेगा राम नाम का गहना।।
सच्चा रिश्ता एक यही है यही पिता यही माता।
मेरे दाता के दरबार में है सब ही का खाता।।

अपने प्रभु से जोड़ के देखो प्रेम प्यार का नाता।
इन चरणों में अमृत पाकर जो आता पी जाता।।
पाकर इनकी चरण धूलि को भवसागर तर जाता।
मेरे दाता के दरबार में है सब ही का खाता।।

राम रहम का दाता है तू झोली अपनी भरता जा।
फल की इच्छा छोड़ के बन्दे सेवा भक्ति करता जा।।
रोम रोम में राम है रमता सब का भाग्य विधाता।
मेरे दाता के दरबार में है सब ही का खाता।।

कृपा ऐसी करो भगवन्

कृपा ऐसी करो भगवन् मुझे अब ज्ञान आ जाए।
तुम्हारे नाम का सुमिरन भी करना आप आ जाए।।

मैं निर्धन हूँ मैं दुर्बल हूँ, दुखी भी हूँ भिखारी भी।
मगर फिर भी तुम्हारा हूँ प्रभु नित ध्यान आ जाए।।
तुम्हारे नाम का ....

अकर्मी हूँ अधर्मी हूँ, मैं पापी हूँ भ्रमित भी हूँ।
मगर सेवक तुम्हारा हूँ, यही बस ध्यान आ जाए।।
तुम्हारे नाम का ......

भँवर में फँस रही नैया, नहीं कोई खेवैया है।
उबारो फिर न हो ऐसा, कहीं तूफ़ान आ जाए।।
तुम्हारे नाम का ......

कृपा ऐसी करो भगवन् मुझे अब ज्ञान आ जाए।
तुम्हारे नाम का सुमिरन भी करना आप आ जाए।।
तुम्हारे नाम का ......

गीता विमर्श

अध्याय 6

(गतांक से आगे)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥30॥

'जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब को मुझ में देखता है, मैं उसके लिए नष्ट नहीं होता और वह मेरे लिए नष्ट नहीं होता'॥30॥

ऊपर पाँचवे अध्याय में भी सांख्यनिष्ठा के अनुसार कर्म-त्याग की प्रक्रिया बताते-बताते भगवान् ने दशम श्लोक में भक्ति भावना के अनुसार कहा है –

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

'भगवान् में कर्मों का समर्पण करके इत्यादि।' ब्रह्म शब्द तो पुरुषोत्तम का भी पर्यायवाची है। गीता में तो उसका अनेक स्थलों पर इस अर्थ में प्रयोग हुआ है।

यहाँ भी वैसी स्थिति है। निर्गुण की साधना है। तदनुकूल आत्मस्थिति है, आत्मदर्शन है। सर्वत्र आत्मभाव है, और ठीक उसके वर्णन के उपरान्त हमें पुरुषोत्तमभाव की, भगवान् की चर्चा मिलती है। इस अध्याय की समाप्ति भी उसी प्रकार से है। गत अध्याय में भी भगवान् ने समाप्ति इसी ऊँची भावना के अनुसार की थी। गीता की पूर्ति भी तो इसी पुरुषोत्तमभाव के प्रति शरणागति में ही तो है। अतः कोई विस्मय की बात नहीं है।

'जो मुझे सब जगह देखता है और मुझ में सभी को देखता है।' जो घट-घट में भगवान् को लीला करता हुआ देखता है, जो सभी में उसी का ही रूप, उसी की अभिव्यक्ति मात्र देखता है, ऐसा व्यक्ति। वास्तव में परम सत्ता तो एक ही है। वही आत्मरूप है, वही प्रकृति है और विकृति है। वह एक ही अनेक रूप हुआ यहाँ खेल करता है। दूसरा तो कोई है ही नहीं। अवस्था भेद से, अभिव्यक्ति भेद से हमें नानात्व प्रतीत होता है। दृष्टि के उतना गहरा न जाने के कारण, उतना ऊँचा उठने में भी असमर्थ होने के कारण, हम एक को नहीं देखते, नानात्व की प्रतीति होती है। नानात्व के मूल में अविद्या है, अज्ञान है। वह बहुत कम जानना है। वह गेहूँ को न जानना है, रोटी, पूड़ी, आदि को ही जानना है। वह आधार को न देखकर केवलमात्र आश्रय को देखना है।

जब चेतना नीचे स्तरों में उतरती है तो बोध सीमित होता जाता है। मानवी स्तर अहं का स्तर है। भेद ही प्रधान है, अतः नानात्व की ही प्रतीति होती है। वस्तुतः एकत्व ही तो नानात्व है। जो एकत्व को देखता है और उससे जगे हुए नानात्व को देखता है, नानात्व को देखता हुआ एकत्व को नहीं खोता और एकत्व देखता हुआ नानात्व को नहीं खोता, वह सगुण-निर्गुण पुरुषोत्तम की चेतना में स्थित है। वह एक होता हुआ, गुणातीत होता हुआ, इन गुणों में नानात्व में भी रचना को रचता और चलाता है। वह अपने गुणातीत भाव को न खोता हुआ सगुण होता है। अतः जो वैसा ही है, जिसकी चेतना एकदम से गुणातीत और सगुण को प्रतीत कराती है, वह पूरा है, वह पूर्ण प्रभु में पूरी तरह से निवास करता है।

सब में उसे देखना, घट-घट में जलती हुई उस ज्योति को पहिचानना है। अपने में भी उसी को पहिचानना है। जड़ जगत् के अणु-अणु में उसको जानना है। समूची अभिव्यक्ति में उसे ही देखना है। पापी और पुण्यात्मा में, पाप तथा पुण्य में, पशु तथा पक्षी में, गाय और कुत्ते में उसे ही देखना है। इसी दर्शन को ही समदर्शन कहते हैं। विषमता में समता को पाना कहा जाता है यही।

और 'सब कुछ मुझमें देखता है'। भगवान् में ही अखिल का निवास है। उसी से है, उसमें है और

उसकी ओर जा रहा है – यह अनुभव करना है। हम ओत-प्रोत हैं उसकी चेतना से, उसमें रहते हैं जैसे जल में मछली रहती है। साधक पहले अपने को हमेशा उसमें अनुभव करने लगता है। अन्दर-बाहर उसे बसा हुआ पाता है, पूर्णरूपेण उसी पर आश्रित पाता है अपने को। प्रत्येक गति उसी से और उसी में होती हुई अनुभव करता है। यह परम संयोग होता है, प्रेमी का प्रियतम से मिलन होता है जिसमें वियोग की सम्भावना बीत जाती है। दोनों घुल-मिलकर एक हो जाते हैं।

अपने में जगी यह अनुभूति व्यापक होती है। जैसे वह प्रभु में रहता है, वैसे ही भूतमात्र उसमें रहता है। हम उसी में रहते हैं, पर जानते नहीं। साधनक्रम में ऊँची चेतना की जागृति होती है और हमें भान हो जाता है।

यह द्विविध अनुभूति ही परिपाक को लाभ करती है 'वासुदेवः सर्वमिति' 'भगवान् ही सब कुछ है' इसमें। वह अपने में आप है। आप ही व्यापक है और आप ही व्याप्य है। वही-वही है। उसी स्थिति के लिए कहा है –

'मालिक तू रहे, तेरी रज़ा रहे,
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे।'

गोपी प्रभु का चिन्तन करते-करते विश्व को और अपने को प्रभुमय प्रतीत करने लगती है। 'सृष्टि सारी श्याममयी है', 'जित देखूँ तित श्याममयी है।'

इसी को वेदान्ती कहता है **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** – 'निश्चय ही यह सब ब्रह्म है।'

यह अद्वैत की पराकाष्ठा है। भक्त उसी अद्वैत में रहता है। अहंकार की नितान्त निवृत्ति होने पर जागृत हो सकती है ऐसी चेतना।

ऐसी स्थिति में (जिसका वर्णन ऊपर किया था), जो द्विधानुभूति है उसका क्या होता है?

भगवान् कहते हैं, 'मैं उसके लिए नष्ट नहीं होता, वह मेरे लिए नष्ट नहीं होता।' नष्ट होना खो जाना, आँखों से ओझल हो जाना है। यह परम संयोग की स्थिति है। भक्त तथा भगवान् एक हो जाते हैं। भक्त सदैव प्रभु में रहता है और प्रभु भक्त में। अतः एक दूसरे के भूलने की सम्भावना ही कहाँ हो सकती है?

यह द्वैत भी है परन्तु परम अद्वैत भी है। यह प्रेम है पराकोटि का जो अद्वैत के बिना सम्भव नहीं और द्वैत है क्योंकि उसके बिना उसकी प्रतीति नहीं।

वास्तव में यह बातें अतीत की हैं – बुद्धि से गम्य नहीं। अनुभव समझाता है। उसकी कृपा से जगती है समुचित चेतना जो रहस्य खोल देती है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥31॥

'जो योगी सब भूतों में स्थित मुझको एकत्व का आश्रय लेकर भजता है, वह हर प्रकार से रहता हुआ मुझ में निवास करता है'॥31॥

जिसने सभी में प्रभु पहचाना है, उसका व्यवहार ही भजन हो जाता है। वह सभी में उसका पूजन करता है, सेवा करता है, नमस्कार करता है। वह अपने में भी उसे ही देखता हुआ अपने में भी खान-पानादि के द्वारा उसकी सेवा करता है। वह भजन सहज होता है। उसमें प्रयत्न नहीं रहता। कर्ममात्र ही भजन हो गया होता है क्योंकि उस सब का अचिन्तित लक्ष्य, निवास स्थान वह प्रभु ही होते हैं। ऐसे ही सन्त के विषय में तो कबीर जी का कथन है –

साधो सहज समाधि भली।

....

जहं जहं डोलौं सो परिकरमा,
जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत,
पूजौं और न देवा॥

यह कहा है उसके लिये जिसका वर्णन ऊपर के श्लोक में हुआ, 'जिसके लिये प्रभु कभी खो नहीं जाते, जो प्रभु के लिये नहीं खो जाता'। जब तक व्यवहार हमें प्रभु से दूर कर देता है तब तक योग

आंशिक है और मन पर आश्रित है। वह प्रयास-सिद्ध है। जब योग सहज हो जाता है, सिद्ध हो जाता है तो वियोग असम्भव होता है। तब साधना समाप्त हो गई होती है। तब याद करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि अन्तर नहीं होता। इसलिये कभी भूलना भी नहीं हो सकता है।

यह एकत्व का आश्रय लेकर किया गया भजन है 'सब में एक और एक में सब'।

ठीक इसी के साथ पढ़ा जा सकता है 18वें अध्याय का 56वाँ श्लोक। भगवान् में प्रवेश पाने के अनन्तर,

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

'सभी कर्म करता हुआ भी, मेरे आश्रित हुआ, मेरी कृपा से शाश्वत अव्ययपद को पाता है।' वहाँ कहा सब कर्म करता हुआ और यहाँ कहा 'सब प्रकार से बरतता हुआ, रहता हुआ।' एक ही अर्थ है। प्रभु में प्रवेश प्राप्त व्यक्ति के विषय में वह कथन है। प्रवेश प्राप्त व्यक्ति की चेतना का दिग्दर्शन हमें यहाँ ऊपर के श्लोक में हो गया है।

इतना स्पष्ट हो जाता है कि इस चेतना को लाभ करने पर व्यवहार की कोई सीमायें नहीं रहतीं। व्यक्ति कर्म कर सकता है, कर्म करता हुआ बंधता नहीं है। गीता की योग-सिद्धि जंगल को नहीं ले जाती है। अजगरी-वृत्ति-परमावस्था नहीं है, गीता की दृष्टि से।

यदि कर्म करने से व्यक्ति बँध सकता है तो सिद्धि है ही नहीं। भगवान् तो इतने महान विश्व का संचालन करते हैं, परन्तु बन्धन में नहीं आते, अपने त्रिगुणातीत-भाव से च्युत नहीं होते और उनसे युक्त हुआ भक्त कर्म में बँध जाये, यह कैसे हो सकता है? वह तो भगवद्गुणों वाला हो जाता है, भागवती-चेतना का भागी होता है। उसके लिए एकान्तवास आदि कोई नियम आवश्यक नहीं रहते।

इतना और यहाँ समझा जा सकता है, 'उसको सब में और सब में उसको पहिचानता है', वह तो सहज में ही **'सर्वभूतहिते-रताः'** हो जाता है। बिना चेष्टा के ही उसके कर्म तो सभी के लिए मंगलमय हो जायेंगे, क्योंकि वह प्रभु के लिये हैं। उसमें स्वार्थ की सम्भावना नहीं रही है।

भक्त का जीवन सहज में ही ऐसा हो जाता है।

'योगी मुझ में निवास करता है।' कर्म उसको भगवान् से दूर नहीं करते। वह जो सब में है, उसे क्या दूर कर सकता है। जिसमें हम सदैव रहते हैं, वह हमसे दूर हो ही कैसे सकता है?

चीन के सन्त ला टोज की इस विषय की उक्तियाँ बड़ी उच्चकोटि की हैं।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥32॥

'जो अपनी उपमा से हे अर्जुन! हर जगह समान देखता है, चाहे सुख हो चाहे दुःख, वह योगी सबसे बड़ा माना जाता है'॥32॥

'जैसे मुझे दुःख होता है, ऐसे ही दूसरों को भी दुःख होता है' जो इस प्रकार से अपने को और दूसरों को समान देखता है, वह योगी है। साधना के परिणामस्वरूप यदि व्यक्ति सहानुभति को खो देता है तो उचित नहीं।

भागवत-धर्म का लक्ष्य तो दूसरा ही है।

भक्त के लक्षण कहते हुए 12वें अध्याय में भगवान् स्वयं कहते हैं – **'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च',** 'सब भूतों से द्वेष रहित, मित्रभावनायुक्त और करुणा वाला'। 'मित्र भावनायुक्त और करुणा वाला' इन लक्षणों को बताया है इस 32वें श्लोक में दूसरे शब्दों में।

अध्यात्म-साधना व्यक्ति को दूसरों से परे कर देती है। प्रायः आत्मसंयम-योग का साधन तो एकान्त की मांग करता है। विविक्त सेवन मांगता है। सांसारिक सम्पर्कों को कम करना होता है। अतः मानव-सहज-कोमलता शुष्क हो जाने की बहुत सम्भावना है। बहुत योगियों में ऐसा हो जाता है, यह देखने में आता ही है। परन्तु, वह अवश्यम्भावी नहीं। दिव्यत्व को, भगवद्भाव

को पाने के लिये मानव-सुलभ सात्विकता की बलि देनी बिल्कुल भी आवश्यक नहीं। भगवान् तो सबके सुहृद् हैं। वह तो दयामय हैं। सम होते हुए भी पतित पावन हैं। यह बातें समता के साथ रह सकती हैं। इतनी बात समझ लेने की है।

दूसरा, भगवान् ने जिस आदर्श को अर्जुन के सामने उच्चतम करके रखा है वह है भक्ति की भावना, शरणागति का योग। उसी के अनुसार है भक्त के लक्षण। कर्मयोग का सहज रूपान्तर है शरणागति की साधना। भगवान् की दृष्टि में तो भक्त बहुत ऊँचा है। भक्त को दयालु होना होगा, सहानुभूति वाला होना होगा, कारुणिक होना होगा। अतः ऊपर वाला कथन है, श्लोक 32 में।

अपनी उपमा से ही दूसरे का सुख-दुःख जाना जाता है। अपने-आपे को मिटाकर दूसरे में बैठकर उसकी पीड़ा को जानना होगा। तब पता चलता है पीड़ा क्या होती है, तब करुणा जागती है। भगवान् तो सभी के भीतर बैठे सभी के द्वारा उनकी सभी प्रकार की अनुभूतियों का आस्वादन करते हैं। वह दुखिया का दुःख उसके द्वारा, उसके हृदय में बैठकर, उससे एक हुआ, वैसे ही जानता है जैसे वह स्वयं जानता है। वह उसमें बसता है भला जाने क्यों न? हाँ, जानता हुआ भी पीड़ित नहीं होता, व्याकुल नहीं होता, अतीत रहता है, जल में कमल की भाँति। योगी में भी यह सामर्थ्य होता है। वह जान सकता है दूसरे के दुःख को, अपने को दूसरे में बसाकर, अपनी उपमा से, परन्तु अछूता रह सकता है। इतना जानना ही करुणा के सोते को जागृत कर देता है, पर वह बहता नहीं है। दयार्द्र होता हुआ भी समझ को नहीं खोता। हित के लिए अपने तरीके से यत्नशील हो जाता है। मित्र भावना सहज होती है सन्त में। अतः करुणा तथा मित्रभावना मिलकर हित साधन कर सकती है। ज्ञान के, समता के लुप्त न होने से, वह अपने को काबू में रख सकता है।

जैसे वह अपने दुःख तथा सुख को अनुभव करता हुआ भी सम रहता है, ऐसे ही परदुःख तथा सुख की प्रतीति में भी रहता है। पर यह कठोरता नहीं, बुद्धिमत्ता है। यदि आंसू व्यर्थ हैं तो क्यों बहायें जायें? यदि वह किसी के दिल को सांत्वना दे सकते हैं तो क्यों न बहें? इसी सन्त हृदय की अद्‌भुत लीला को देखते हुए तो कवि ने कहा है –

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
महत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

'वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल सन्तों के चित्त को कौन जान सकता है?' यही दशा तो भगवान् की अवतार-लीला में दीखती है। गोपिकायें तड़पती हैं उनके लिए। सुदामा के वह चरण चापते हैं। बाली का वध करते हैं और जटायू के प्रेत-कृत्य करते हैं: सीता जी को निर्वासित कर देते हैं और भरत जी के लिए कैसे द्रवित होते हैं? वह आन्तरिक-समता विचित्र विषमता के रूप में प्रकट होती है। करुणा का तो पार नहीं है, भगवान् के हृदय में।

भक्त तो भगवान् की प्रतिमूर्ति होता है। ऐसा योगी ही सबसे बढ़ चढ़कर है।

(क्रमशः)

Our Sadhana implies an outlook on life. The entire life is to be looked upon as a school of Sadhana and so have we to accept every event of life.

(from As I Understand - Sadhana)

गुरु वाणी

प्रार्थना भागवती शक्ति का आवाहन है, प्रार्थना (अपने आपको) भागवती शक्ति की क्रिया के लिये खोल देना है। प्रार्थना भागवत सम्पर्क को प्रतीत करना है और पूर्णतया उसका हो जाना है। प्रार्थना वह है जिसके द्वारा भागवती शक्ति का आवाहन-अवतरण होता है। अतः नाम स्मरण भी प्रार्थना ही है और भाव की तरंग में प्रभु चरणों से लिपट जाना, उसकी गोदी तक पहुँच जाना, आलिंगन में प्रभु से एक हो जाना-यह सभी प्रार्थना ही है। नाम का स्मरण मन्त्रमय प्रार्थना है और यह दूसरी भावमयी। (पत्र 88)

❖ ❖ ❖

दूसरों की कमज़ोरियों और अच्छाईयों को समझने के लिए व्यक्ति को अपने आपे से ऊपर उठ कर सोचना चाहिए। जहाँ पर हम प्रभावित होते हैं किसी व्यक्ति के व्यवहार से, वहाँ हमारी समझ साफ नहीं रह पाती, अतः अपने से होने वाले किसी के व्यवहार का विचार न करके सोचना सीखें। (पत्र 94)

❖ ❖ ❖

त्रुटियाँ-कमज़ोरियाँ तो व्यक्ति में रहती ही हैं। उसके प्रयत्न करने से भी तत्काल चली नहीं जाती, हम स्वयं कोशिश करते हैं तो भी एक दम अपनी कमज़ोरियों को दूर नहीं कर पाते। अतः दूसरों को मापते समय खूब उदारता से परख लेना चाहिए, नहीं तो हम असत्यता में पड़ जायेंगे। ग़लत और अनुदार धारणा दूसरों के बारे में बना ली जायेगी। उससे भीतर राग-द्वेष की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठेगी। (पत्र 94)

❖ ❖ ❖

कोई व्यक्ति अपनी परिस्थिति के लिए उचित व्यवहार भी क्यों न कर रहा हो यदि वह व्यवहार हमारे मनोनुकूल नहीं बैठता तो हम उस व्यक्ति को बुरा समझने लग जाते हैं। कारण? हम सारी दुनियाँ को अपनी रुचि और सुख के पैमाने से मापते हैं। यह ठीक नहीं।

यदि हम इतनी बात का ख़्याल रखें तो बहुत से लोग जो हमारे कारण दु:खी होते हैं वह दु:खी न हों और अनजाने ही जो हम दूसरों को बुराई की ओर दौड़ाते हैं न दौड़ायें। (पत्र 94)

❖ ❖ ❖

अपने को शिथिल करके यदि मन शब्द के द्वारा आकृष्ट हो तो उसे उसमें लगा देना चाहिये और स्मरण करते चले जाना चाहिये। उस प्रभु की समीपता को प्रतीत करने का यत्न करें, भावना करें और अपने को उस पर पूर्णतया छोड़ देना स्वीकार करें। यही समझना चाहिये कि हम उस जगज्जननी विश्वमाता की गोद में हैं और वह हमें अपने समीप अति समीप लिये जा रही है। (पत्र 95)

❖ ❖ ❖

व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहे और उसकी कीमत देने को तैय्यार न हो तो स्वस्थ कैसे रह सकता है?

जीवन के भीतर गम्भीरता लाना, सुख दु:ख को सहन करने की योग्यता प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। सहनशीलता से व्यक्ति सुखी रह सकता है। असहनशील व्यक्ति के लिये सुख कहाँ? (पत्र 96)

❖ ❖ ❖

बाहर के प्रभावों, बातों को, व्यवहार को सहन करना होगा यह सोचकर कि जीवन में यह सब कुछ होता ही है। यह जीवन की पूर्णता के लिये आवश्यक भी है और इससे इसलिए कोई नहीं बच सकता। (पत्र 96)

❖ ❖ ❖

Letters to Seekers

Letter No. 30 : Shri Ram : Ram Kuti, Pillibhit.
03.02.1945

My dear ......,

I was much pleased to receive your letter. The question has pleased me immensely, as also the good news about your plying the spinning wheel. When I come next, if I could get time, we shall spin together "the wheel of awakening." You will kindly take care not to over exert yourself.

Yes, I remember, that I was luke-warm in my response to these words of yours. The matter at hand then was about intellectual opening and I was trying to stress the intellectual surrender. My lukewarmness was simply to egg you on, so that the consciousness may begin to descend from above and become a spontaneous and living thing with you, with which no mere intellectual imagination कल्पना (conviction) can compare. The fact that it is all He, becomes the natural waking consciousness – rocklike consciousness, behind the phenomenal experience, and it gradually goes on expanding and intensifying as one proceeds ahead in evolution.

I very highly appreciate the relaxation which is induced by this type of meditation, it will bring down more and more of the higher consciousness and this experience will begin to expand and 'live'. You are on the right lines, this however, has to be admitted that the consciousness has yet to deepen and expand. I am sure, you claim no finality, nor do I, in my case. I meant this much, not an iota more, as far as I can recall.

You had better put the question earlier and definitely, or let it go for some time. To escape the confusion, if you could. What is done is done.

Will our instruments be divinised to interpret authoritatively?

A divinised intellect remains an intellect all the same. The limitation of thought that it must be relative is not to be broken, or intellect ceases to be intellect and becomes akin to intuition. All thought must be relative. We think with reference to separate objects (things), or with reference to parts of the same whole. The Reality transcends all limitations – all relativity, and hence it must escape the grasp of intellect. Could an object of three dimensions ever be successfully expressed in terms of two dimensions, or of four dimensions in terms of three dimensions – just an example. Reality includes all and transcends all. The inclusion – the relationship of past to the rest is describable and is the object of scientific investigation, but what the Reality is by itself, beyond all these relationships -must always skip the hold of intellect, whether divine or undivine, for it is not its province. Someone has said 'The burden of philosophy is to define the indefinable.'

There is a difference in the realization of Krishna, Buddha and others, as translated to the plane of intellect or waking consciousness, but the Realizations by themselves must be the same. But in reality it is meaningless to say so, for none can 'know' the realization, not even the realizer in the ordinary sense of the word (Upnishad) (विज्ञातारं केन विजानीयात्).

'How will you know the knower'. So, the differences are there, to talk in the (ordinary) sense of the word, but it does not mean that they did not experience the same Reality in all its nakedness or that they had not attained the highest heights of realization in our sense of the word 'high' (for all words are relative). Each had a standpoint to view and viewed it and described it as he viewed it. That came to be the basis of his particular philosophy.

An instance, the same valley is looked at by an artist, canal engineer, a forester, a geologist, and they all see different things though the object is the same. Not only that we look through the limitation of our senses and 'see' what we see. A man with four senses will see the same thing as different and another with six or a wider range of susceptibility will see much more in the same. The object is the Reality yet it is seen as different by different persons. A man with infinite susceptibility and looking at from infinite points of view can alone see the reality in entirety, can know the Reality in itself, in the absolute. The very supposition of such a man, proves the impossibility for he himself must be a part of the Reality. You see the limitation of all thought.

The differences are made by the focussing of the waking -lower consciousness. If it is focused above to the Reality in itself – all relationships sink, are transcended, and the transcendental is experienced as the sole Reality. If it is focused on the mutually interacting parts of the Reality then the transcendental consciousness falls in the background and the laws of interaction are studied as in the case of Budha. He never denied the Reality – 'Fathom not the unfathomable. And drop not the string of thought into the bottomless.'

So he said in answer to a query regarding the ultimate Reality, according to the "Light of Asia" version. The seed contains the tree within it, or else the wheat could produce a gram plant. However, the tree lies there latent, it is not potent. This may become potent under particular circumstances and give forth a plant. The mutable, the wasting-plant is the क्षर, that which was lying latent within was not mutable at all, hence अक्षर (Akshar). The seed is in reality something more than the plant either latent or potent. This is a mere example. The Reality includes all this – the universe and yet transcends it, is much more than it. Take the example of light. Light contains the seven colours, but is not limited by them singly, when they combine, the light is colourless. It includes all colours and yet transcends them. Reality includes all forms. That is, all forms are the Reality, but not all forms and hence is formless. If any form is assigned to it in exclusion of others, it will exclude others. Similarly all individualities are the Reality manifest; otherwise whence individuality if it was not latent in the Reality? But no particular individuality can be assigned to it (as above in the case of form). It transcends individuality. But when we approach it, a corresponding appropriate individuality is put forth.

With blessings and love,

Yours in the Lord,
Ramanand

❖ ❖ ❖

भागवत के मोती

अप्रैल 2023 अंक से पत्रिका में श्रीमद्भागवत के चुने हुए सन्देश छपने आरम्भ हुए हैं। इस अंक में प्रस्तुत है इन सन्देशों की तेरहवीं कड़ी –

64. जीवों की सभी योनियाँ, सभी गतियाँ त्रिगुणमयी हैं। जीव ज्ञाननिष्ठा के द्वारा उनसे सदा के लिये मुक्त हो जाता है। सत्त्व-रज आदि गुण जो दीख रहे हैं, वे वास्तविक नहीं हैं, मायामात्र हैं। ज्ञान हो जाने के बाद पुरुष उनके बीच में रहने पर भी, उनके द्वारा व्यवहार करने पर भी उनसे बँधता नहीं। उसका कारण यह है कि उन गुणों की वास्तविक सत्ता ही नहीं है।

– भागवत 11.26.2

65. साधारण लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो लोग विषयों के सेवन और उदरपोषण में ही लगे हुए हैं, उन असत् पुरुषों का संग कभी न करें; क्योंकि उनका अनुगमन करने वाले पुरुष की वैसी ही दुर्दशा होती है जैसे अंधे के सहारे चलने वाले अंधे की। उसे तो घोर अंधकार में ही भटकना पड़ता है।

– भागवत 11.26.3

66. स्त्री ने जिसका मन चुरा लिया, उसकी विद्या व्यर्थ है। उसे तपस्या, त्याग और शास्त्राभ्यास से भी कोई लाभ नहीं और इसमें सन्देह नहीं कि उसका एकान्त सेवन और मौन भी निष्फल है।

– भागवत 11.26.12

67. सन्त पुरुषों का लक्षण यह है कि उन्हें कभी किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। उनका चित्त मुझमें लगा रहता है। उनके हृदय में शान्ति का अगाध समुद्र लहराता रहता है। वे सदा-सर्वदा सर्वत्र सबमें सब रूप से स्थित भगवान् का ही दर्शन करते हैं। उनमें अहंकार का लेश भी नहीं होता, फिर ममता की तो सम्भावना ही कहाँ है। वे सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में एकरस रहते हैं तथा बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक और पदार्थ सम्बन्धी किसी प्रकार का भी परिग्रह नहीं रखते।

– भागवत 11.26.27

68. जो लोग आदर और श्रद्धा से मेरी लीला-कथाओं का श्रवण, गान और अनुमोदन करते हैं, वे मेरे परायण हो जाते हैं और मेरी अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

– भागवत 11.26.29

69. जो इस घोर संसार-सागर में डूब-उतरा रहे हैं, उनके लिए ब्रह्मवेत्ता और शान्त सन्त ही एकमात्र आश्रय हैं, जैसे जल में डूब रहे लोगों के लिये दृढ़ नौका।

– भागवत 11.26.32

कार्यकारिणी की बैठक की कार्यवाही

दिनांक 19 अप्रैल 2026, रविवार को कार्यकारिणी की बैठक साधना धाम हरिद्वार के कार्यालय में पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार दोपहर 10:30 पर माननीय श्री विष्णु कुमार गोयल जी की अध्यक्षता में आयोजित की गई। बैठक में निम्नलिखित सदस्य उपस्थित हुए –

1. श्री विष्णु कुमार गोयल - अध्यक्ष
2. श्रीमती सुशीला जायसवाल - वरिष्ठ उपाध्यक्ष
3. श्री अनिल मित्तल - उपाध्यक्ष
4. श्रीमती रमना सेखड़ी - सचिव
5. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री - कोषाध्यक्ष
6. श्री हरपाल सिंह राजपूत - सदस्य
7. श्री रवि कान्त भण्डारी - प्रबन्धक
8. श्री रमेश जायसवाल - सदस्य
9. श्री जगत सिंह - सदस्य
10. श्रीमती कृष्णा भण्डारी - सदस्य
11. श्रीमती कमला सिंह (वर्मा) - सदस्य
12. श्रीमती अरुणा पाण्डेय - सदस्य
13. श्री विजेन्द्र गौड़ - सदस्य
14. श्री संजय सेखड़ी - सदस्य
15. श्रीमती रेवा भांबरी - सदस्य
16. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल - सदस्य
17. श्री अजय अग्रवाल - सदस्य
18. श्रीमती सोमवती मिश्र - सदस्य

पूज्य गुरुदेव की वन्दना के पश्चात बैठक की कार्यवाही आरम्भ की गई। सर्वप्रथम, पिछली बैठक दिनांक 17.12.25 की कार्यवाही पढ़कर सुनाई गई जिसका सभी सदस्यों ने अनुमोदन किया। तत्पश्चात अध्यक्ष जी ने सभी सदस्यों का स्वागत करते हुए बताया कि पिछले कुछ दिनों से धाम में अनुशासनहीनता की घटनाओं की सूचना मिल रही हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सभी सदस्यों ने ऐसी घटनाओं पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हुए धाम को पुनः साधनामय बनाने के लिये आवश्यक उपायों पर विचार करने तथा उचित निर्णय लेने हेतु श्री विष्णु गोयल जी की अध्यक्षता में चार-सदस्यीय समिति के गठन की स्वीकृति दी जिसके सदस्य होंगे –

1. श्री विष्णु कुमार गोयल
2. श्री अनिल मित्तल
3. श्री संजय सेखड़ी
4. श्री विजेन्द्र गौड़

अनुशासन समिति को उचित निर्णय लेने के लिये अधिकृत किया गया।

(2) दिगोली तपस्थली के निर्माण कार्य की प्रगति पर सूचना देते हुए अध्यक्ष जी ने बताया कि दीवार का कार्य पूर्ण हो चुका है तथा इस पर लगभग 14 लाख रुपये का खर्च आया है। कार्यसमिति ने इस गुरुतर कार्य के लिये अध्यक्ष जी व उनकी टीम के सदस्यों को बधाई दी व खर्च का पुनः अनुमोदन किया।

(3) साधना धाम हरिद्वार में सोलर पेनल लगने की सूचना देते हुए अध्यक्ष जी ने बताया कि पेनल लगने के बाद बिजली का बिल काफी कम आ रहा है। उन्होंने बताया कि सोलर पेनल लगवाने में लगभग 8 लाख रुपया खर्च हुआ है। हमारे साधकों द्वारा इस मद में भी सहयोग दिया गया है और इसके लिये सभी साधकों को धन्यवाद दिया गया।

कार्यसमिति के सदस्यों ने धाम के दिन-प्रतिदिन में होने वाले कार्यक्रमों में सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया जिससे धाम का वातावरण साधनामय हो। तत्पश्चात पूज्य गुरुदेव को भोग लगाकर बैठक समाप्ति की घोषणा की गई।

पुनश्च: अध्यक्ष जी ने साधना धाम में एक स्थायी प्रबन्धक को नियुक्त करने की आवश्यकता

पर बल दिया क्योंकि वर्तमान प्रबन्धक का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है और वह पूर्णकालिक प्रबन्धक के रूप में कार्य करने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर चुके हैं। अतः माननीय सदस्यों ने उनकी सेवायें समय-समय पर उनकी सुविधानुसार मार्गदर्शन हेतु लिये जाने की सहमति देते हुए एक पूर्णकालिक प्रबन्धक की नियुक्ति पर स्वीकृति दी जिससे धाम का दैनिक कार्य सुचारु रूप से चल सके।

श्रीमती रमना सेखड़ी
सचिव

श्री विष्णु कुमार गोयल
अध्यक्ष

❖ ❖ ❖

वार्षिक साधारण सभा का विवरण

दिनांक 20.4.2026 सोमवार को स्वामी रामानन्द साधना धाम हरिद्वार के प्रांगण में साधारण सभा की बैठक श्री विष्णु कुमार गोयल जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। पूज्य गुरुदेव की वन्दना के पश्चात बैठक की कार्यवाही प्रारम्भ की गई जिसमें दिनांक 9.7.2025, 17.12.2025 तथा 19.4.2026 को हुई कार्यकारिणी की बैठकों का विवरण पढ़कर सुनाया गया जिसका सभी उपस्थित सदस्यों ने अनुमोदन किया।

बैठक में 110 सदस्य उपस्थित रहे।

श्रीमती रमना सेखड़ी
सचिव

श्री विष्णु कुमार गोयल
अध्यक्ष

❖ ❖ ❖

We have to recognize the real place of money in life and give it its due. That it is necessary for living and making good use of life is plain, and if it is earned to spend it rightly, I do not see any harm at all. If it is made an end in itself i.e. we begin to love gold for its own sake, it is a terrible attachment and will bring us again down here till we are sick of it.

(from As I Understand - Sadhana)

श्री गुरुदेव निर्वाण दिवस साधना शिविर - 2026 - विवरण

निर्वाण दिवस के अवसर पर दिनांक 14 अप्रैल की रात्रि को अखण्ड जाप किया गया। 15 अप्रैल को प्रातः 5:30 बजे गंगा जी के घाट पर जाकर पूज्य गुरुदेव को पुष्पांजलि अर्पित की गई। तत्पश्चात् मन्दिर में आकर जाप की पूर्ति की गई। उसके बाद उपस्थित साधकों ने पूज्य गुरुदेव महाराज के प्रति अपनी–अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। दोपहर में ब्रह्मभोज का आयोजन किया गया, जिसमें 13 ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा प्रदान की गई। 16 अप्रैल को अपराह्न की सभा में रात्रि जाप की ड्यूटी लगाकर शिविर का विधिवत शुभारम्भ किया गया। शिविर में 75 साधकों ने भाग लिया। शिविर की पूर्ति 21 अप्रैल की प्रातः के सामूहिक जाप के पश्चात् की गई। बाहर जाने वाले साधकों को मार्ग का भोजन देकर विदा किया गया।

श्रद्धांजलियां

बहन अरुणा पाण्डेय जी

निर्वाण दिवस के शिविर में एक बार पुनः 1952 की कुछ मुख्य घटनायें याद कीं। जब महाराज जी स्थूल से सूक्ष्म शरीर की यात्रा पर जाने की तैयारी कर रहे थे तो इलाहाबाद शिविर, जो कि उनका अन्तिम शिविर था, की पूर्ति पर उनमें तीव्र वैराग्य दिखाई पड़ा। वह बिना किसी की ओर देखे तेजी से चले गये। सभी उनका यह व्यवहार देखकर बड़े दुःखी हुए क्योंकि वे तो बड़े दयालु और सबके अपने थे। स्वामी जी का शरीर शान्त होने से एक वर्ष पूर्व सत्यदेव जी को अलग–अलग दो बार स्वप्न आया था कि पूज्य स्वामी जी ने शरीर छोड़ दिया है।

एक बार माँ ने कहा कि महाराज हमें आपका एक सुन्दर सा चित्र चाहिए। महाराज जी झट से तैयार हो गये और स्टूडियो जाकर चित्र खिंचवाया। यह उनका अन्तिम चित्र था। 13 अप्रैल को सुमित्रा माँ से बोले – माँ! कहो तो अब इस शरीर से कह दूँ – बस! माँ घबरा गईं, बोलीं यह क्या कह रहे हो महाराज? सब समझ रहे थे कि अब ठीक होने वाले हैं। विधाता हमारी मन्द बुद्धि पर हँस रहा था। इतना संकेत देने पर भी किसी को समझ नहीं आई तो जब आये तब समझने दें। यही तो लीला है प्रभु की, यही रहस्य है।

13 अप्रैल की दोपहर को पूज्य गुरुदेव महाराज ने आज्ञा दी कि जिनके पत्र आये हैं उन्हें लिख दो कि मैं ठीक हो रहा हूँ। 15 तक यहाँ हूँ, निश्चिन्त रहिये, यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। लोगों ने समझा कि 15 को अस्पताल से डिस्चार्ज हो जायेंगे, परन्तु कौन जानता था कि 15 को तो उनको अदृश्य होकर डिस्चार्ज होना था।

पूज्य सुमित्रा माँ लिखती हैं –

क्या कहूँ वह क्या था
एक होते हुए भी वह अनेक था
अनेक होते हुए भी वह कुछ न था
कुछ न होते हुए भी वह सब कुछ था
बस, आगे इतना ही कि वह चला गया? नहीं।
क्या हम अनाथ हो गये? नहीं। निश्चय ही नहीं।
आज भी वो हमारे साथ हैं और रहेंगे।

बहन मीरा दुबे जी

माया के प्रपंच जाल चहुँ ओर घेरे हुए।
राम नाम कवच ने पूर्ण किया है काज आज
गुरु प्रसाद ने चूर्ण किया है पाप परिवार आज
शत शत नमन सभी साधक समाज को
नाम ध्यान जप यज्ञ विश्व को बना दिया है
दी है पतवार आज डूबते जहाज को
श्रद्धा के पुष्प समर्पित चरणों में बारम्बार
स्वीकार करो मेरे प्यारे गुरुदेव महाराज॥

प्रवचन सार

शिविर में साधकों द्वारा दिये गये प्रवचनों का सार नीचे दिया जा रहा है -

श्री विष्णु कुमार गोयल जी

गीता के अध्याय 3 के श्लोक 35 में भगवान् ने कहा है –

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह॥

अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है जबकि दूसरे का धर्म भय को देने वाला है। वो सारी गतियाँ और वो सारे कर्म जो हमारे विकास में सहायक हैं वही हमारा स्वधर्म है। व्यक्तिगत धर्म से जो हमारा कर्म है वही हमारे विकास की माँग है; जैसे चौथे दर्जे के विद्यार्थी को वहीं रहकर उसका विकास सम्भव है।

यहाँ भगवान् कहना चाहते हैं कि व्यक्तिगत दृष्टि से स्वधर्म वही है जिसमें जो जिस स्थिति में है उसी के अनुरूप अनुभवों को ग्रहण करने के लिये तैयार है। दूसरे की स्थिति का अनुसरण नहीं करना चाहिए।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाये तो भी समाज के सभी व्यक्ति एक दूसरे का सहयोग करते हैं तभी समाज ठीक प्रकार से चल पाता है। यहाँ तक कि पशु-पक्षी और वनस्पतियाँ भी परस्पर सहयोग करते हैं। बीज जब बोया जाता है तब उसमें अंकुरण होता है और अंकुरण तभी हो पाता है जब सूर्य की ऊर्जा के साथ-साथ पानी और मिट्टी का सहयोग मिलता है। उसी प्रकार घर में जब रोटी पकाई जाती है उसमें भी कितने ही लोगों का सहयोग लेना होता है।

सारांश यह है कि समाज की व्यवस्था सभी के सहयोग से ठीक प्रकार से चल पाती है।

बहन मीरा दुबे जी

ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥

गीता के अध्याय 5 के श्लोक 3 का आशय समझाते हुए बताया कि कर्मयोगी अपने कर्मों को करता हुआ संसार बन्धन से छूट जाता है क्योंकि वह सभी कर्म फल की आकांक्षा से रहित और निष्काम भाव से करता है। वह किसी से द्वेष नहीं करता है। भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को इसी कर्मयोग की साधना बताई है।

कर्मयोग को समत्व योग भी कहते हैं क्योंकि कर्मयोगी अनुकूलता और प्रतिकूलता में सम रहता है और सभी कर्म जन-कल्याण के लिये करता है।

बहन कान्ति सिंह जी

आध्यात्मिक साधन के प्रथम खण्ड में पुकार के बारे में बताया गया है। एक सन्त ने कहा है – "प्रभो! मेरी अन्तरात्मा में तीव्र उद्वेग पैदा कर दे। वह कदापि शान्त न हो जब तक मैं तुम्हें पूरी तरह प्राप्त न कर लूँ।"

पूज्य गुरुदेव भगवान् ने कहा है – "लम्बी यात्रा के लिये तैयारी जरूरी होती है। आध्यात्मिक साधन के लिये भी ऐसा ही है। नि:सन्देह पुकार तो आध्यात्मिक पथ का प्रवेश-पत्र ही है। इसके बिना इस पथ पर पग धरना मना है।"

आध्यात्मिक साधन में आगे श्री गुरु महाराज ने लिखा है –

"पुकार की पुष्टि के लिये सबसे बलवान साधन है सत्संग। जितना उच्च कोटि का सत्संग होगा उतना ही अधिक लाभ होने की सम्भावना है। दूसरी सहायता अध्ययन से ली जा सकती है। सन्तों की जीवनियाँ, आप्त पुरुषों के चरित्र पुकार को पैदा करने में बहुत अधिक सहायक होते हैं। तीसरी सहायता मनन है। अध्ययन मनन-पूर्वक करना आवश्यक है। अध्ययन के लिये समय की अवधि प्रतिदिन के लिये निश्चित करें

और मनन के लिये उससे दुगुना समय लगायें, तभी उसका लाभ होगा। इसके लिये रात्रि में सोने से पूर्व का समय सर्वाधिक उपयुक्त है।''

चतुर्थ सहायता है प्रार्थना। भगवान् से मांगो कि वह तुम्हें सच्ची पुकार प्रदान करें, व्याकुलता प्रदान करें। यह एक निधि है साधन पथ की। यदि व्याकुलता नहीं होगी तो रजोगुण से आसक्त होकर मनुष्य को रास्ते में ही खड़ा कर सकती है।

अपने दूसरे दिन के प्रवचन में बहन जी ने गीता के अध्याय 7 के श्लोक 16 का अर्थ समझाते हुए बताया कि चार प्रकार के भक्त होते हैं – आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

ये चारों ईश्वर के भक्त होते हैं किन्तु ज्ञानी भक्त भगवान् को सर्वाधिक प्रिय होते हैं क्योंकि उनकी कोई कामना नहीं होती। परन्तु ज्ञानी भक्त बनना इतना आसान नहीं होता। जब तक हमारे विकार पूरी तरह समाप्त नहीं होते, हम ईश्वर से नहीं जुड़ पाते और इसमें कई जन्म लग जाते हैं। श्लोक 19 में स्वयं भगवान् ने कहा है –

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

मानस में शबरी माँ का उदाहरण है। कितना समय लग गया था भगवान् के दर्शन मिलने में।

बहन कान्ति मिश्र जी

जिस व्यक्ति पर भगवान् की कृपा होती है वही ईश्वर की शरण आता है। सेवा का अवसर भी भगवान् की कृपा से ही मिलता है।

''सेवा साधन वृक्ष है, फल है प्रेम प्रसाद।''

भगवान् की कृपा मिलती है नाम जप से। ''राम'' छोटा सा मन्त्र है परन्तु बड़े से बड़े कष्ट को दूर कर देता है।

अहंकार विकार है हरि और मेरे बीच।

भगवान् राम ने स्वयं कहा है –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

सोते, जगते, सब काम करते-करते राम नाम का मन में जाप करते रहें।

कर्म सभी कर प्रभु को अर्पित,
जीवन निष्काम बनायें हम।

शान्त रहो, प्रेम से भरे रहो, राम नाम जपो। नाम-मय प्रार्थना करें। भजन और जप। जप का विशेष महत्व है।

बहन उमा शुक्ल जी

गीता के अध्याय 3 श्लोक 6 में कहा गया है कि –

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

जो व्यक्ति कर्मेन्द्रियों को रोककर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी है। हठपूर्वक इन्द्रियों को रोककर मन से चिन्तन करने से मन अशान्त रहता है। हमें अन्दर के विकार को निकालने के लिये उसे रास्ता देना होगा। विकारों को दूर करने के लिये मन से इन्द्रियों को वश में करके भगवान् से जुड़कर कर्म करना है। इसी से हमारे विकार कम होते जायेंगे। हमें पाप-पुण्य में उलझने की आवश्यकता नहीं है। हम जहाँ हैं वहीं रहते हुए अपने सभी कर्तव्य कर्मों को स्वधर्म की भावना से करें।

हमारा जीवन प्रभु से युक्त होने के लिये मिला है। विकास क्रम में समय के अनुसार परिवर्तन होता चला जाता है और हमारा स्वधर्म भी बदलता रहता है। प्रायः हमें दूसरे के काम को देखकर लगता है कि उसका काम आसान है तो हम उसे करने लगते हैं। यह हमारा प्रलोभन है और हम उसे भली-भाँति कर भी नहीं पायेंगे। जैसे एक डॉक्टर का काम वकील ठीक से नहीं कर पायेगा। इसलिये अपने स्वधर्म को ही पूरे मनोयोग से करना चाहिए।

श्री अनिल मित्तल जी

जो साधक गुरु को समर्पित होते हैं उनके भाग्य

भी बदल जाते हैं। यह बात श्री मित्तल जी ने अपने जीवन में घटी कुछ घटनाओं का दृष्टान्त देकर समझाई। आगे श्री मित्तल जी ने बताया कि हम अपने स्वरूप को पहचानें कि हम जीव हैं और अपनी शरीर रूपी नगरी के राजा हैं, इन्द्रियाँ हमारे अधीन हैं। जो व्यक्ति सभी कर्मों को भगवान् का समझ कर समुचित निष्ठा से करता है और पूरे मनोयोग से करता है उसके सभी कर्म अकर्म होते चले जाते हैं; जैसे कमल का फूल जल में रहते हुए भी उससे लिपायमान नहीं होता। जो मनुष्य आसक्ति से रहित होकर अपने सभी कर्मों को करता है और फल की आकांक्षा से रहित होकर करता है वही व्यक्ति श्रेष्ठ है।

अतः हम सभी को हर समय भगवान् से जुड़े रहने और नाम जप करते रहने का प्रयास करना चाहिए।

बहन सुशीला जायसवाल जी

गीता के अध्याय 2 के श्लोक 42, 43 और 44 का आशय समझाया जिनमें सकाम मनुष्यों के स्वभाव का वर्णन किया गया है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

वेदों की कुछ ऋचायें ऐसी हैं जिनमें सकाम कर्म करने की विधि बताई गई हैं। अलग-अलग कामनाओं की पूर्ति के लिये पृथक-पृथक देवताओं की पूजा का विधान बताया गया है। किसी से धन की प्राप्ति, किसी से पुत्र की प्राप्ति, किसी से कष्ट निवारण तो किसी से स्वर्ग की प्राप्ति। जो लोग कर्मफल के प्रशंसक वेदवाक्यों में ही विश्वास रखते हैं, भगवान् कहते हैं कि ऐसे लोग भोग और ऐश्वैर्य में आसक्त रहते हैं। उनकी परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती।

हम लोग इन्द्रियों के माध्यम से रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श का सुख चाहते हैं। इन भोगों की कोई सीमा नहीं होती। जो भोग हम भोग चुके, जो हम भोग सकते हैं और आगे जो कुछ भोगना चाहते हैं उसी की चिन्ता करते रहते हैं, मनन करते रहते हैं। जब तक भोग और संग्रह है तब तक बुद्धि दृढ़-निश्चयी नहीं होती है। जो केवल प्राणों की रक्षा के बारे में सोचते हैं वो असुर कहलाते हैं। शरीर स्वस्थ है तो सेवा और प्रेम में लगाना है।

पदार्थ, क्रिया, भाव, उद्देश्य का हमें ज्ञान होना चाहिए। जब साधन भजन करते हैं तो हमारी बुद्धि विवेकनी हो जाती है। सुख दुःख से आगे बढ़ना है। अनुकूलता से राग, प्रतिकूलता से द्वेष नहीं करना है। सकाम व्यक्ति की व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होती। हमें अपने उद्देश्य को समझना चाहिए। मनुष्यों को सौभाग्य मिला है ईश्वर को प्राप्त करने का।

बहन सुनीता दुआ जी

संसार की अग्नि में हम सभी सुलग रहे थे। ऐसे में पूज्य गुरु महाराज ने हम सभी को शीतलता प्रदान की। उन्होंने हमारा मार्गदर्शन किया कि किस प्रकार हम गृहस्थी में रहते हुए ही निर्मल हो सकते हैं। हमारा व्यवहार ही साधना और सेवा है। यदि हमें परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठाना नहीं आता तो हम परेशान ही रहेंगे, क्योंकि भगवान् हमें उन्हीं परिस्थितियों में रखते हैं जहाँ हमारा विकास सम्भव है।

निज विकास के लिये ज़रूरी विविध भली और बुरी अवस्था।

घर-गृहस्थी ही हमारी तपोभूमि है क्योंकि यहीं रहकर हम स्वयं का विकास कर सकते हैं और अपने काम, क्रोध आदि विकारों को दूर कर सकते हैं। हमें दूसरों के कल्याण के लिये भी प्रार्थना करनी है। हमें बदले की भावना से रहित होकर सभी से प्रेम-पूर्वक व्यवहार करना है और धीरे-धीरे अध्यात्म-विकास के मार्ग में आगे बढ़ते चले जाना है।

बहन सुमन जायसवाल जी

भगवान् ने गीता अध्याय 9 के श्लोक 22 में बताया है कि –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो लोग अनन्य भाव से सतत मेरी उपासना करते हैं उनका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। जो योगीजन हैं वे एकमात्र भगवान् के ही आश्रित रहते हैं जैसे छोटा बच्चा अपनी माँ के ही आश्रित रहता है, और सभी में अपने प्यारे प्रभु का ही दर्शन करते हैं –

जित देखूँ तित राममयी है
जित देखूँ तित श्याममयी है

पूज्य भैय्या जी ने लिखा है –

आदि-स्रोत है प्रभु की सत्ता
है अनन्त चहुँ ओर से
कोटि ब्रह्म गतिशील करे जो
देखत ही दृग कोर से
निरखि छवि प्रभु झूमो नाचो
हृदय कुञ्ज में मोर से

भगवान् के एक ही इशारे पर करोड़ों ब्रह्माण्डों की रचना हो जाती है। साधक अपने कर्मों के द्वारा ही भगवान् की पूजा करता है और उसके पास जो प्राप्त है उसी को पर्याप्त समझता है। वह भगवान् के हर विधान को सहर्ष स्वीकार करता है; जैसे सुदामा जी बहुत समय तक कष्टों को झेलते रहे लेकिन प्रभु के पास नहीं आये।

साधक अपने मन से, वाणी से और कर्मों से भगवान् की पूजा करता है और निष्काम भाव से सभी कर्म करता है। ऐसे भक्तों का योगक्षेम भगवान् स्वयं करते हैं।

बहन कमला सिंह जी

भगवान् ने गीता के अध्याय 3 के श्लोक 9 में समझाया है कि –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥

यज्ञ के निमित्त किये गये कर्मों के अतिरिक्त हम जो भी कर्म करते हैं वे सभी बन्धन के कारण होते हैं। कर्म के तीन प्रकार हैं –

1. **मदर्पण कर्म** – यदि कर्म के प्रारम्भ में भूल गये लेकिन कर्म करने के बाद सभी कर्म भगवान् को अर्पण कर देते हैं तो वे सभी कर्म मदर्पण हो जाते हैं।
2. **मदर्थ कर्म** – जब हम सभी कर्म प्रारम्भ में ही भगवान् की सेवा समझकर करते हैं तो वे सभी कर्म मदर्थ कर्म हो जाते हैं।
3. **मत्कर्म** – जब हम सभी कर्म फल की आकांक्षा से रहित होकर करते हैं तो वे मत्कर्म हो जाते हैं।

हम सभी के कर्तव्य कर्म में समय के अनुसार स्वाभाविक ही परिवर्तन होता रहता है। हमें हर परिस्थिति में तीन बातों का ध्यान रखना जरूरी है –

1. जागरूक रहो
2. कर्म प्रभु के लिये हो
3. सिर झुकाओ

प्रत्येक कर्म कर्तृत्व के अभिमान से रहित होकर और फलाकांक्षा की भावना से रहित होकर करें तो हम बन्धन से मुक्त होते चले जायेंगे।

बहन रमना सेखड़ी जी

प्रभु से अनुराग करना है, आत्मा परमात्मा का अंश है, हमें राग-द्वेष नहीं करना है, उसने हमारा हाथ पकड़ा है, उसके ऊपर पूरा विश्वास करना है। हम शरीर हैं, आत्मा अजर अमर है। हमें भक्ति करनी है, राम नाम का जप करना है, जो अभ्यास से सम्भव होगा।

हमारा उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है, आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति ही अध्यात्म है। हर जगह अध्यात्म है। इच्छाओं, काम, घृणा, द्वेष से ऊपर उठें। गांधारी ने भी मोह किया था, क्या पाया।

''मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।''

जो निम्न स्तरीय है उसे त्यागो। किसी का बुरा मत करो, इनका अतिक्रमण हो सकता है। कुछ साधनों को अपना कर अपने अस्तित्व की व्यवस्था को बदल दें,

अपने स्वभाव को बदलें।

प्रेम और प्यार में अन्तर है। प्रेम सिर्फ देना जानता है, प्यार अदले का बदला चाहता है। जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे, पुराने संस्कार छूटेंगे। अध्यात्म मनुष्य को गलती करने का अधिकार देता है, नित्य नवीन आशाओं का सन्देश देता है, इसमें असफलता नहीं होती, सफलता की तरफ ले जाता है। जब प्रकाश के सभी साधन चूक जायेंगे तो भी अध्यात्म की ज्योति हमें मिलेगी। हम अकेले नहीं हैं, भगवान् हमारे साथ है।

बहन कुसुम माहेश्वरी जी

हमारा गृहस्थ जीवन सबसे बड़ी पाठशाला है। यहीं पर रहकर हम अपना विकास कर सकते हैं। पूज्य गुरुदेव महाराज ने पत्र पीयूष पत्र संख्या 344 में बताया है कि स्थिरता और शान्ति हमारी साधना के आधार होने चाहिए। स्थिरता और शान्ति हमारे आनन्द को बढ़ाते हैं। जहाँ जाकर हमें अपनी कमियों का पता चले वही सत्संग करणीय है जिससे हमारा हृदय निर्मल होता चला जाये।

हमारा रास्ता नाम का रास्ता है, महाशक्ति के अवतरण का रास्ता है, समर्पण का रास्ता है। नाम पतितों का उद्धार करता है, हृदय में प्रभु को प्रकट करता है, दिल और दिमाग को साफ करता है और सच्चरित्रता देता है। जीवन को सुखमय कर देता है। नाम से महाशक्ति का अवतरण होता है जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय – सभी कोशों का शोधन कर देता है।

बहन अरुणा पाण्डेय जी

प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने कैकेयी का जो चरित्र चित्रण किया है, वह गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस से मेल नहीं खाता। गुप्त जी की 'साकेत' नामक कृति में कैकेयी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। उसमें कैकयी का जो चरित्र प्रस्तुत किया है उसके अनुसार तो कैकयी बहुत महान स्त्री थीं। वह यौवना और अत्यन्त रूपवती तो थी हीं, महान पतिव्रता भी थीं। उसने अपने प्राणों की परवाह न करके युद्ध में अपने पति महाराज दशरथ के प्राण बचाये थे। भगवान् राम भी उसको अत्यन्त प्रिय थे। राम के अवतार का उद्देश्य पूर्ण करने के लिये ही उसने राम की इच्छा के अनुसार राम को 14 वर्ष के लिये वन में भेजा था जिसके लिये उसने लोक-प्रवंचना और वैधव्य भी स्वीकार किया।

श्री जगत सिंह जी

पूज्य स्वामी जी की बातों को हम मानें और अनुसरण करें – यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी। अध्यात्म में आगे बढ़ने का साधन है सेवा, सत्संग और सुमिरन।

बिनु सत्संग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

मानस में और भी कहा गया है –

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

नाम जप के बारे में भी कहा गया है –

मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भगति सो बेद प्रकासा॥

सेवा तीन प्रकार से की जा सकती है – तन से, मन से और धन से। इसके अतिरिक्त दीन दुखी व्यक्ति को नाम जप देकर भी सेवा कर सकते हैं। स्वयं सुमिरन करके उसका फल दूसरे को दे सकते हैं।

शिविर की पूर्ति पर बहन सुशीला जायसवाल जी द्वारा दिया गया प्रबोधन

सर्वप्रथम पूज्य गुरुदेव महाराज के चरणों में प्रणाम जिनकी सूक्ष्म अध्यक्षता में शिविर का संचालन हुआ। उसके बाद सभी आये हुए साधकों का धन्यवाद जिन्होंने इस महान यज्ञ में अपनी आहूतियाँ दीं।

यदि सभी लोग कठिनाई और श्रम करने वाले काम को भली भाँति नहीं करेंगे तो समाज की व्यवस्था गड़बड़ा जायेगी। आदान-प्रदान से ही समाज की व्यवस्था ठीक प्रकार से चल पायेगी। अतः हम सभी को अपना स्वधर्म भगवान् की आज्ञा समझकर खुशी-खुशी और ईमानदारी से करना चाहिए।

ऐसे थे हमारे पूज्य गुरुदेव

यद्यपि स्वामी जी महान् पण्डित, व्याख्याकार, सन्त और सरल स्वभाव के प्रभु प्राप्त व्यक्ति थे, तो भी उनमें बड़प्पन का भाव नाम को भी न था। वे गुरु की अपेक्षा पथ-प्रदर्शक शब्द अच्छा समझते थे। और प्राय: इसे ही प्रयोग करते थे। इससे भी बढ़कर वे मित्र का सा व्यवहार करते थे। जिस प्रसन्नता से चरण स्पर्श कराते थे उसी से अपने शिष्यों के जूते भी उठा सकते थे।[1] कोई उनसे डरने की ज़रूरत ही न समझता था, जिस प्रकार महाशक्ति से उन्होंने माँ का नाता जोड़ा, उसी तरह वे स्वयं माँ बन गये थे। वत्सलता ही उनका सबसे बड़ा गुण था, माँ की तरह वे सेवा और प्यार करते थे। सतत् योगी होने के कारण उनमें अनेक क्षमतायें थीं। उन्होंने अनेकों की दरिद्रता का हरण किया। अपने पास किसी प्रकार का धन न होने पर भी अनेकों की धन से सहायता करते थे। जहाँ उन्हें इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता दिखती, वे अपने धनी भक्तों को प्रेरित करते और वे उनकी आज्ञा का पालन करने में अपना सौभाग्य अनुभव करते। जब वे संस्कारों के कारण किसी को बहुत अधिक व्याकुल अनुभव करते, तो उनकी करुणा बह निकलती, वे चाहते कि उसके संस्कारों का, उसके दु:खों का स्वयं भुगतान कर दें। एक बार मैं स्वयं ही एक संस्कार के कारण अत्यधिक व्याकुल था, उन्होंने लिखा कि तुम्हारी विकलता मुझसे सहन नहीं होती। क्या मैं अपने ऊपर ले लूँ तुम्हारे संस्कार को? कितनी करुणा थी। अपने गुरुभाव के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा – ''आप लोग मुझमें गुरुभाव रखते हैं। जो मंगलमयी माँ महाशक्ति है, जो हमारा राम है, वह है इस भावना का वास्तविक पात्र, वही माँ स्वीकार करती है, आप लोगों की ऊँची भावना को, समर्पण को, श्रद्धा और प्रेम को; वही देती है आशीर्वाद, उसी का वरद हस्त आप लोगों के सिर पर है, वही उठाये लिये चली जा रही है।''

''मैं कुछ नहीं हूँ। वही सब कुछ है। खिलौना सा हूँ उसके हाथों का, आप लोगों की सेवा के लिये और यह भी उसकी कृपा की देन है, अपनी योग्यता से नहीं।''

---

1. **स्याहीदेवी शिविर की एक घटना है –** पहाड़ों पर बर्फ जरा जल्दी शुरू हो जाती है। ऐसे अवसर पर ठण्ड भी बढ़ जाती है। रात्रि में अखण्ड-जाप होता था। जाप-गृह के बाहर बरामदा था। रात्रि में जो साधक जाप में भाग लेने जाते थे जिससे वे ठण्ड के कारण जूते बरामदे में उतार कर एक दम से जाप के कमरे में पहुँचने की सोचते थे जिससे कि पैर नंगे फर्श पर न पड़ जायें। ठण्ड से बचने की पैरों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। एक दिन रात्रि की गोष्ठी में स्वामी जी ने इधर संकेत किया और जूते जाप-स्थान से दूर उतारने की सलाह दी। पवित्रता के साथ-साथ इसमें यह भी बात थी कि जूतों की आवाज से भीतर बैठे साधकों के ध्यान में बाधा पड़ती थी। अगले दिन सामूहिक बैठक के समय जब साधकों के जूते फिर बरामदे में देखे तो उठ खड़े हुए और मुस्कुराते हुए उनकी गठरी बांध बाहर लाकर पंक्ति में सजा दिए।
2. **दूसरी घटना है कैलाशयात्रा की –** कैलाशयात्रा में एक स्थान पर सबके हाथ-पैर तथा जूते कीचड़ से बुरी तरह भर गये। पास के स्रोत पर हाथ-पैर और जूते धोने में एक साथी पिछड़ गये। पूज्य स्वामी जी, जब तक वे अपने हाथ और पैर स्वच्छ करें, न केवल स्वयं स्वच्छ हो गये वरन् उन्होंने उक्त साथी के जूते भी धोकर स्वच्छ कर दिये और चल देने के लिये कहा।

कैसे अद्भुत गुरु थे, उनके शिष्यों में अधिकांशत: आयु में उनसे बड़े थे। संघी महोदय जैसे वृद्ध साधकों को उनकी गोद में बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोते देखा जा सकता था, कितना स्नेह पूर्ण कोमल कर स्पर्श था, कैसा निश्चिन्त कर देने वाला आशीर्वाद था। गोदी में लेटने पर लगता मानों सब पाप-ताप दूर हो गये हैं, मानों अब कुछ न चाहिए। मुँह से पुचकारते भी थे, आश्वासन भी देते थे। विश्वास रखो मैंने तुम्हारी बाँह पकड़ ली है, मैं ज़िम्मेदार हूँ सबके लिये। समय आने पर सब हल हो जायेगा, धैर्य रखो और सचमुच ही सब हल हो जाता। इतना बड़प्पन होते हुए भी अभिमान का रत्ती भर लेश न था। एक स्थान पर स्वयं लिखते हैं, ''गुरुपन का अभिमान तो साथ चल ही नहीं सकता, इस पथ में। सेवा की भावना में भी तो एक अहं दिखने लगता है। क्या भावना, कैसी भावना? दु:खिया का दु:ख ही तो प्रेरणा होती है, किसी भावना विशेष के लिये गुंजाइश ही कहाँ है, यदि ऐसा हो तो?''

सिद्धि का अर्थ ही भूल गया हूँ, यदि विमल-प्रेम को पाने के लिये अनेक जन्म भी लग जायें, तो भी उसे सस्ता ही समझूँगा।''

सम व्यवहार – स्वामी जी की साधना में स्त्री-पुरुष का कोई भेदभाव न था। वे सब पर समान रूप से कृपा करते। वे कहा करते कि ''स्त्री-पुरुष भेद, भीतर की काम-भावना पर निर्भर करता है। आन्तरिक संस्कार के क्षीण होने पर यह मिट जाता है, अन्तस् निर्मल हो जाता है, स्त्रियों के साथ व्यवहार में किसी प्रकार का भय अथवा संकोच नहीं होता जब माँ इसे भीतर से मिटा देती है। इसी प्रकार जब स्त्री में काम-संस्कार क्षीण होकर मातृत्व प्रतिष्ठित हो जाता है, वह पुरुषों को बालवत् स्नेह कर सकती है। विषमता सहज समाप्त हो जाती है।''

''एक है पुरुष का अहं, मैं पुरुष हूँ, स्त्री नहीं हूँ। दूसरे अहं की तरह यह भी बन्धनकारी है, विभेदकर है। स्त्री-पुरुष के विभेद रूपी अहं से ऊपर है पुरुषोत्तम भाव। इस भेद से ऊपर उठे बिना इस भाव को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। मैं स्त्री हूँ और पुरुष भी हूँ और मैं इन दोनों लिंगों से परे हूँ। मैं कुछ भी नहीं हूँ और सब कुछ मैं हूँ। यह स्थिर चेतना ही तो ऊँची चेतना है। सभी लौकिक भाव इसमें लीन हो जाते हैं, हमेशा-हमेशा के लिये। अहं के साथ है मान-अपमान, वह भी पूरी तरह तभी मिटता है, जब अहं मिटता है माँ के कृपा कटाक्ष से।''

उपर्युक्त विचार उनके जीवन में उतर आये थे। अत: उन्हें महिलाओं के साथ व्यवहार में कोई संकोच, भय अथवा परेशानी न होती, वे सभी से सरल भाव से व्यवहार करते।

जून 1950 के स्याही देवी के शिविर में स्वामी जी के महिलाओं के साथ निस्संकोच व्यवहार को देखकर पुराने काम-संस्कार-युक्त कुछ साधकों में बेचैनी पैदा हो गई थी। वह भाव-तरंग नैनीताल में गंगा माँ तक पहुँची, माँ ने अपने पत्र में कुछ सुझाव दिये। स्वामी जी ने 11.7.1950 को अल्मोड़ा से उसके उत्तर में एक विस्तृत पत्र लिखा, यह पत्र उनके भीतर के सत्य को खोल कर रख देता है। उनकी सच्ची तस्वीर को प्रकट करता है, उस पत्र के अंश प्रस्तुत हैं –

''मैं उस परम सत्ता को माँ की भावना के द्वारा जानता हूँ। यह भावना इतनी मजबूती से गड़ी है कि हिलाये नहीं हिलती।'' **''हम बालक तुम माय हमारी''** मानों मेरी नस-नस में बसा है। यदि स्त्रियों के प्रति मातृ-भावना सहज ही जग जाती है तो कोई विस्मय की बात नहीं। बालकपन मेरे लिये सहज है। इसी कारण स्त्रियाँ और बच्चे मुझ से शीघ्र ही हिल-मिल जाते हैं। यह मेरी सामान्य भावना का ही परिणाम है।''

''वह महाशक्ति मेरे लिये तो दूर की सत्ता नहीं है। मैं तो सदैव उसमें हूँ और वह मुझमें हैं। जब

मैं किसी माँ की गोद में सिर रखता हूँ तो वह वेग से उतर आती है, उसमें और उसके द्वारा मुझमें। इस प्रकार का वेगवान् अवतरण बड़ा प्रबल और स्थायी भाव रखता है दूसरे पर। मैं भी उस माँ के प्रबल प्रवाह को प्रतीत करता हूँ। मेरे लिये यह साधना ही होती है, दोनों के लिये माँ का आशीर्वाद होता है।''

''प्रेम की जगी हुई अग्नि भस्म कर देती है कुसंस्कारों को। अनन्यता सहज में पनपती है। जो त्याग वैराग्य से हो सकता है, उससे अधिक हो जाता है प्रेमभरी सेवा से। यह रास्ता निराला है, इसमें सन्देह नहीं।''

''मैं सोचता हूँ अनेकों के लिये मेरी प्रबल गृहस्थी है, मुझे दूसरों के दुःखों की चिन्तायें हैं, मैं सभी कुछ करता हूँ उनके लिये, मेरी अनेक बेटियाँ और बेटे हैं, बहिनें हैं। अब के मैंने दूल्हा भी बनाया है, यह सब क्यों? इसलिये कि मैं जीता हूँ, सेवा के लिये। मैं जीता हूँ, दूसरों के भीतर जागृति के लिये। मैंने ऐसा ही बनाया है इसे। परन्तु यह सब करते हुए भी ''मैं करता हूँ'' ऐसा प्रतीत नहीं होता है। किसी से विलगाने पर व्यथा नहीं होती। ऐसा लगता है कि माँ यह प्रबल खेल कर रही हैं यह यन्त्र है और कभी यह भान भी नहीं रहता। रहती है बस मस्ती। बन्धन का भय नहीं है, पतन का डर नहीं है, कल को यह काम होता ही रहे, यह चिन्ता और आग्रह नहीं है। उसके आगे कण-कण झुका है, चाहे जहाँ और चाहे जैसे रखे, सभी नाते उसके हैं, सभी प्यार उसका है और उसी पर उँडेला जाता है। यह है वस्तु-स्थिति।''

''मैं प्रेम को प्रभु का रूप देखता हूँ। मैं प्रेम को आत्म जागृति का चिह्न समझता हूँ। मैं प्रेम करने की, निर्मल दिव्य प्रेम करने की योग्यता को, प्रभु की समीपता का पैमाना मानता हूँ। मैं प्रेम को निर्मल करने वाला, अनन्य बना देने वाला, प्रभु का कर देने वाला साधन समझता हूँ। मैं उपासक हूँ प्रेम रूपी प्रभु का। मुझे वह सगुण और निर्गुण दोनों ही दिखता है और अनुभव में आता है। मैं प्रेम को वासनाओं के क्षीण करने का सुगम साधन समझता हूँ। मैं प्रेम को तप, त्याग, वैराग्य, संन्यास का सबसे बड़ा प्रबल साधन और प्रभु चरणों तक पहुँचने का उपाय समझता हूँ। विकलता प्रेम की साधना के काल की संगिनी है। भक्ति की पराकाष्ठा मुझे प्रेम में ही दिखती है।''

''यह मेरी अनुभूति है, ऐसी मेरी धरणा है तभी तो लोगों में सहज से प्यार में कोई वासना तो आपने न देखी होगी। वह तो वासनाओं का विस्मरण करा देता है। हाँ, मेरे प्रति एक विचित्र भावना जगती है। मैं जानता हूँ कि मैं इष्ट बनकर सामने आ जाता हूँ, दूसरों के भीतर। वास्तव में यह मैं नहीं हूँ। यह तो वह होता है, जो मेरे भीतर काम करता है। दूसरों में जागृति करता है, जिससे महाशक्ति का अवतरण होता है। वह जो सहज से सम है, शान्त है और दिव्य है। आखिर हम भगवान् को किसी भाव में देखते हैं, किसी रूप का निर्माण करते हैं। उस घट-घट वासी राम के लिये। वह एक तस्वीर सी आ जाती है। वह उस अनन्त चेतना के प्रवाह का मार्ग-सा बन कर जुड़ जाता है, साधक के साथ। यह मेरे लिये भी उतने ही विस्मय की बात है, जितनी औरों के लिये। मेरा कोई निजी संकल्प इस विषय में नहीं होता है। हां! इतना जानने लगा हूँ कि जो जितना अधिक मुझे स्वीकार कर पाता है उतनी ही ऊँची चेतना का प्रवाह उसमें बहने लगता है। और उतनी जल्दी ही उसका जीवन शान्त होने लगता है उसके संस्कारों का क्षय होने लगता है। ऐसा समझता हूँ कि वह शक्ति, जिस तक पहुँचने के लिये सात आसमान पार करने पड़ें, वह इस यन्त्र के द्वारा पास में ही उतरी मिल जाती है। तभी तो इतनी जल्दी से और प्रबल प्रवाह होता है समर्पण का रास्ता भी तेजी से खुलने लगता है। यह सब मैं तटस्थ भाव से लोगों के अनुभव से जानता हूँ, वैसे मेरी कुछ जानकारी नहीं है।''

''जागृति का साधन है प्यार। जब तक दूसरा

व्यक्ति निस्संकोच नहीं हो जाता, मेरे प्रति उदार तथा कोमल नहीं हो जाता, चाहने पर भी मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता। मैं अपने को असहाय अनुभव करता हूँ। एक ही उपाय होता है कि उसका हृदय पिघले, वह मुझे अपना ले। इसलिये किसी को बेटी बनाना होता है और किसी को बेटा। यह रहस्य है सारे खेल का। इसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता खूब प्रमाणित भी हुई है।''

''मैं जानता हूँ, लोगों को विकलता होती है। मैं जानता हूँ; लोगों के लिये सभी रिश्तेदारों से प्यारा हो जाता हूँ। मैं इसमें दोष नहीं देखता। अध्यात्म का प्रतीक होकर, उस माँ का प्रतीक होकर ही मैं दूसरों के सामने आता हूँ और इस भाव में ही मुझे स्वीकार करने से आगे चला जाता है।''

''इस सब में मेरा निजी कुछ नहीं है। मैं तो उस खिलाड़ी के खेल को देखता हूँ, जैसे और देखते हैं। खेलता वही है और वह तो अछूता रहता है। उसमें अनन्त सामर्थ्य है, अनन्त प्रेम है और अनन्त बोध है। जो प्रकट होता है, वह तो नगण्य-सा है।''

''अब रहा मेरा साधुभाव और मर्यादायें। मेरी साधना और मेरी विचार-धारा पुरानी साधना और विचार-धाराओं से निराली है। अब तक लोगों ने जीवन से भागना सिखाया है। मैंने तो सीखा है, सभी कुछ प्रभु से स्वीकार करना। जहाँ रखा है, उसने रखा है और हमारे हित के लिये रखा है। जिधर हमारा हित होगा, उधर वह हमें ले जायेगा, हमें तो उस पर डालना है अपने आप को।''

''मैंने सीखा है कि संसार से भागने से आसक्ति नहीं जाती, पैसे के त्याग से लोभ नहीं जाता, स्त्री के अदर्शन से काम नष्ट नहीं होता। ये बीमारियाँ भीतर छिप जाती हैं ऐसा करने से, इनका उन्मूलन होता है प्रभु की कृपा से, महाशक्ति के अवतरण से, ऊँची चेतना के भीतर जग जाने से, यह काम क्रमशः होता है। संस्कारों का क्षय इसके लिये आवश्यक है। इसीलिये जीवन की सभी अनुभूतियाँ मुझे साधना दिखती हैं, स्त्रियाँ मुझे कामवासना को क्षय करने के लिये इस रूप को धारण किये हुए महाशक्ति माँ दिखती हैं। और रुपया मुझे लोभ-संस्कार की निवृत्ति का मार्ग दिखता है, और संसार मुझे सेवा तथा प्रेम की साधना का क्षेत्र दिखता है। मैंने तो समूचे जीवन को ही साधना करके देखना सीखा है, मैं जीवन से भाग कैसे सकता हूँ?''

''तप, त्याग तथा वैराग्य अब तक भी साधना के आदर्श हैं। यहाँ तो अभीप्सा की, समर्पण की, प्रेम तथा सेवा की माँग है (इनमें भी आन्तरिक तप, त्याग, वैराग्य तो रहता ही है।) यहाँ माँग है सौम्यता की, पूरी तरह से प्रभु का होकर उसी के लिये जीने की। इतना विशाल अन्तर है दोनों दृष्टिकोणों में।''

''वहाँ पर सुस्वादु भोजन का निषेध है, वहाँ स्त्री के दर्शन का निषेध है, वहाँ पर किसी गृहस्थी के यहाँ टिकने का निषेध है, साधु के लिये। साधु तप और त्याग की मूर्ति होता है; उस विचारधारा के अनुसार। इस विचारधारा में तो वह जो उसकी शक्ति के प्रसार का प्रखर यन्त्र बना है, जिसने आपा खो दिया है माँ में, जिसका जीवन अपने लिये नहीं दूसरों की लिये ही है, जो दूसरों की सेवा के लिये ही जीता है प्रभु के प्रसाद का वितरण ही जिसके जीवन में एक बात है जो प्रेम तथा मधुरता की मूर्ति बना है और जिसे अपने कल्याण की कामना नहीं रही, वह है साधु। जो पूरी तरह समर्पित हो चुका है, महाशक्ति माँ के हाथों में, जो यन्त्र बना खेलता है उसकी गोद में अनवरत, वह है साधु। बाहर का कोई बन्धन उसे साधु नहीं बनाता है। न ही उसे असाधु बना सकता है, कोई बाह्य बन्धन व उसका अभाव। सौम्यता उसमें सहज होती है अन्यथा प्रेम कैसा?''

''वह जो कुछ ग्रहण करेगा प्रभु से जो कुछ उसका है प्रभु का है, उसका खाना-पीना सभी प्रभु से ही है। वह किसी भी बाह्य परिस्थितियों से भागता नहीं है। उसने तो सभी कुछ स्वीकार करना सीखा

है। वह डरता नहीं है क्योंकि भय तो संस्कार का सूचक है, संस्कार तो क्षीण होने चाहिए। अस्तु, वह माँ पर निर्भर हुआ स्वच्छन्द विचरता है। वह उसकी मार्गदर्शिका ही नहीं, उठाकर ले जाने वाली माँ होती है। उसका उद्धार पतन उसकी चिन्ता का विषय ही नहीं रहता। इस प्रकार का सिद्ध इस मार्ग का साधु होता है। पूर्व की अवस्था साधना की है। इतना अन्तर है विचारधाराओं में। ऐसी अवस्था में मैं कैसे हो सकता हूँ एक स्टैण्डर्ड साधु? जो दूसरों में तप-त्याग की भावना जागृत कर सके, जो दूसरों को संयम सिखा सके। यदि मेरे पिछले समूचे जीवन का निराकरण हो सके, तभी सम्भव है कि मैं और तरह का साधु बन पाऊँ। परन्तु इसके लिये कई जन्मों की आवश्यकता होगी।''

इस साधना में जो त्याग होता है, वह आन्तरिक और सहज है। इसमें जो वैराग्य होता है, वह तो प्रभु के चरणों में अनन्यता ही होती है। इसमें जो तप-संयम है, वह तो रास्ते की माँग है। केवल प्रेम का नाम-मात्र है और कुछ नहीं।''

''मैं अपने व्यवहार में ऐसा ही हूँ। स्त्रियों से बरतने में निस्संकोच हूँ जैसे पुरुष बरतते हैं वैसे स्त्रियाँ भी निस्संकोच बरत सकती हैं। मुझे कुछ आपत्ति नहीं होती है, मुझे कोई भय नहीं लगता है। रही समाज की बात। हमारे समाज में वह पुरानी विचारधारा रग-रग में समाई है। उसी के अनुकूल हमारी मर्यादायें हैं। मेरे लिये तो साधना, आध्यात्मिक सत्य का ही एक पैमाना है। इसीलिये तो टक्कर हो जाती है। इसीलिये तो लोग निन्दा करते हैं। क्या लोकभय से भयभीत होकर अपना आध्यात्मिक सत्य खो दूँ? क्या जिस बात को मैं समाज के लिये अहितकर समझता हूँ, उसी को समाज से डर कर करने लगूँ? मैं स्त्री और पुरुषों का इतनी दूर-दूर रहना, परस्पर छूत मानता हूँ। परस्पर स्वाभाविक होने वाले सम्पर्कों को स्वीकार करना ही साधना की माँग है। यदि किसी के हित की यह माँग है कि मैं अकेले में उससे मिलूँ, तो मैं इसलिये न मिलूँ कि लोग क्या कहेंगे – यह कैसे हो सकता है? अनावश्यक अकेलापन मुझे पसन्द नहीं, पर आवश्यक-अनावश्यक का निर्णय समाज करेगा क्या? वहाँ यह योग्यता नहीं। वहाँ सहानुभूति भी नहीं है। मैं तो अपने को डॉक्टर समझता हूँ। रोगियों का उपचार करता फिरता हूँ। वैसे ही बरतता हूँ और स्वतन्त्रता लेता हूँ।''

''अनुचित प्रवाह स्वतः शान्त होते हैं और आज तक होते आये हैं, यदि हमारे सम्बन्ध में कालिमा है तो गलती है। वैसा न होना चाहिए।''

''यदि मेरी नियत ठीक है, यदि मुझमें बल है और दिमाग चकरा नहीं जाता है विरोध को देखकर, यदि उस भीतर काम करने वाली शक्ति ने मुझे सम्भाला है और बरत रही है, तो जो प्रवाह पैदा होंगे वे स्वतः ही शान्त भी होंगे। उनसे दूर जाना और बिचक जाना तो मैं कायरता ही समझता हूँ। आध्यात्मिक मरण होगा वैसा करना।''

''मैंने तो राम को सभी में देखना, उसी को प्यार करना, उसी की सेवा करना, उसी के द्वारा भीतर-बाहर के खेल को देखना यही जाना है। आपा खोना ही आदर्श रहा है। प्रेम में उसे पहचाना है। उसके विशाल रूप में लीन होना सीखा है। पाया है, नहीं पाया है – यह भी तो मुझे पता नहीं। पाया न पाया की चिन्ता तो रही नहीं। न जाने माँ ने ऐसा विचित्र और अटपटा मार्ग क्यों दिया है मुझे?''

– कविराज नरेन्द्र कुमार

पत्र में लिखित उपर्युक्त भावों से उनकी क्रान्तिकारी विचारधारा के ही दर्शन होते हैं। सत्य के ऊपर दृढ़ आस्था के दर्शन होते हैं, समाज द्वारा अनादृत और लांछित मातृत्व को ससम्मान उनके अधिकार में प्रतिष्ठित करने के दृढ़ संकल्प के भी दर्शन होते हैं।

प्रेम और शरणागति

('कल्याण' पत्रिका से उद्धृत)

प्रेम का वास्तविक वर्णन हो नहीं सकता। प्रेम जीवन को प्रेममय बना देता है। प्रेम गूँगे का गुड़ है। प्रेम का आनन्द अवर्णनीय होता है। रोमांच, अश्रुपात, प्रकम्प आदि तो उसके बाह्य लक्षण हैं, भीतर के रसप्रवाह को कोई कहे भी तो कैसे? वह धारा तो उमड़ी हुई आती है और हृदय को आप्लावित कर डालती है। पुस्तकों में प्रेमियों की कथा पढ़ते हैं, किन्तु सच्चे प्रेमी का दर्शन तो आज दुर्लभ ही है। परमात्मा का सच्चा प्रेमी एक ही व्यक्ति करोड़ों जीवों को पवित्र कर सकता है।

बरसते हुए मेघ जिधर से निकलते हैं, उधर की धरा को तर कर देते हैं। इसी प्रकार प्रेमी भी प्रेम की वर्षा से यावत् चराचर को तर कर देता है। प्रेमी के दर्शन-मात्र से ही हृदय तर हो जाता है और लहलहा उठता है। तुलसीदास जी महाराज ने कहा है –

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा।
चंदन तरु हरि संत समीरा॥

समुद्र से जल लेकर मेघ उसे बरसाते हैं और वह बड़ा ही उपकारी होता है। भगवान् समुद्र हैं और सन्त मेघ। भगवान् से ही प्रेम लेकर सन्त संसार पर प्रेम बरसाते हैं और जिस प्रकार मेघ का जल नदियों, नालों से होकर पृथ्वी को उर्वरा बनाते हुए समुद्र में प्रवेश कर जाता है, ठीक उसी प्रकार सन्त भी प्रेम की वर्षाकर अन्त में प्रभु के प्रेम को प्रभु में ही समर्पित कर देते हैं।

प्रभु चन्दन के वृक्ष हैं और सन्त बयार।

जिस प्रकार हवा चन्दन की सुगन्धि को दिग्दिगन्त में फैला देती है, उसी प्रकार सन्त भी प्रभु की दिव्य गन्ध को प्रवाहित करते रहते हैं। सन्त को देखकर प्रभु की स्मृति आती है। अतएव सन्त प्रभु के स्वरूप हैं। जैसे पपीहा और किसान तो केवल मेघ के ही आश्रित हैं, इसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष भी केवल सन्तों के ही आश्रय रहते हैं।

प्रेमी की वाणी और नेत्र आदि से प्रेम की वर्षा होती रहती है। उस का मार्ग प्रेम से पूर्ण होता है। वह जहाँ जाता है, वहाँ के कण-कण में, हवा में, धूलि में उसके स्पर्श के कारण प्रेम-ही-प्रेम दृष्टिगोचर होता है। उस का स्पर्श ही प्रेममय होता है, स्नेह से ओतप्रोत होता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह प्रेम कैसे प्राप्त हो? इस सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने कहा है –

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

किन्तु शोक है, हम लोगों का प्रेम तो कांचन-कामिनी, मान-प्रतिष्ठा में हो रहा है। हम तो सच्चे प्रेम के लिये हृदय में कभी कामना ही नहीं करते। जब तक प्रेम के लिये हृदय तरस नहीं जाता, व्याकुल नहीं होता, तब तक प्रेम की प्राप्ति हो भी कैसे सकती है? अभी तो हम लोगों का कामी मन नारी-प्रेम में ही आनन्द की उपलब्धि कर रहा है। अभी तो हम लोगों का लोभी चित्त कांचन की प्राप्ति में ही पागल है। हम लोगों का चंचल चित्त मान-बड़ाई के पीछे मारा-मारा फिरता है। जब तक हम लोगों का यह काम और लोभ सब ओर से सिमटकर एकमात्र प्रभु के प्रति नहीं हो जाता, तब तक हम प्रभु के प्रेम को प्राप्त भी कैसे कर सकते हैं?

प्रेमी मूक रहते हुए भी भाषण देता है। मानो उस का अंग-अंग बोलता है। उसके सभी अवयवों से मानो एक शुद्ध संकेत एक निर्मल ध्वनि निकलती है। प्रेमी उपदेश देने नहीं जाता, वह क्या बोले, कैसे बोले? गोपियों ने प्रेम की शिक्षा किसे और कब दी थी? भरत जी ने भक्ति का उपदेश कब और किसे दिया? उनके चरित्र उपदेश देते रहे और देते रहेंगे। प्रेम में जिस अनन्यता और आत्मसमर्पण की सराहना की गयी है, उसकी सजीव मूर्ति गोपियाँ हैं। इसी प्रकार रामायण में उसके प्राणस्वरूप प्रेममूर्ति श्री भरत जी हैं।

यह हमारा शरीर ही क्षेत्र है। इस खेत में कर्मरूप जैसा बीज बोया जायेगा, वैसा ही फल उपजेगा। बीज तो परमात्मा का प्रेमपूर्वक ध्यान सहित जप है। परन्तु जल के बिना यह बीज उग नहीं सकता। वह जल है हरि-कथा और हरि-कृपा। खेत में गेहूँ बोने से गेहूँ, आम बोने से आम और राम बोने से राम ही निपजेगा। हम प्रेमपूर्वक भगवान् के ध्यान और जप का बीज बोयेंगे तो फलरूप में हमें प्रेममय भगवान् ही मिलेंगे। प्रेममय भगवान् का साक्षात्कार ही इस बीज का फल है। साधारण बीज तो धूलि में पड़कर नष्ट भी हो जाता है, परन्तु निष्काम राम-नाम का वह अमर बीज कभी नष्ट नहीं होता। जल है हरि-कथा और हरि-कृपा, जो सन्तों के संग से ही प्राप्त होती है। उस हरि-कथा और हरि-कृपा से ही हरि में विशुद्ध प्रेम होता है। अतएव प्रेम की प्राप्ति का उपाय सत्संग ही है।

प्रभु में हमारा प्रेम कैसा हो ? श्री राम का उदाहरण लीजिये। भगवान् श्री राम लता-पता से पूछते हैं – 'तुमने मेरी सीता को देखा है ?' गोपियों को देखिये, वे वन-वन 'कृष्ण', 'कृष्ण' पुकार-पुकार कर अपने हृदय-धन को खोज रही हैं; जितनी ही अधिक तीव्र उत्कण्ठा प्रेम में होती है, उतना ही शीघ्र प्रेममय ईश्वर मिलते हैं।

भगवान् जल्दी-से-जल्दी कैसे मिलें – यह भाव जाग्रत् रहने पर ही भगवान् मिलते हैं। यह लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती चले। ऐसी उत्कट इच्छा ही प्रेममय के मिलने का कारण है और प्रेम से ही प्रभु मिलते हैं। प्रभु का रहस्य और प्रभाव जानने से ही प्रेम होता है। थोड़ा-सा भी प्रभु का रहस्य जानने पर हम उसके बिना एक क्षण-भर भी नहीं रह सकते।

पपीहा मेघ को देखकर आतुर होकर विह्वल हो उठता है। ठीक उसी प्रकार हमें प्रभु के लिये पागल हो जाना चाहिए। हमें एक-एक पल उसके बिना असह्य हो जाना चाहिए।

मछली का जल में, पपीहे का मेघ में, चकोर का चन्द्रमा में जैसा प्रेम है, वैसा ही हमारा प्रेम प्रभु में हो। एक पल भी उसके बिना चैन न मिले, शान्ति न मिले। ऐसा प्रेम प्रेममय सन्तों की कृपा से ही प्राप्त होता है। चन्दन के वृक्ष की गन्ध को लेकर वायु समस्त वृक्षों को चन्दनमय बना देती है। बनाने वाली तो गन्ध ही है। परन्तु वायु के बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार सन्त लोग आनन्दमय के आनन्द की वर्षा कर विश्व को आनन्दमय कर देते हैं, प्रेम और आनन्द के समुद्र को उमड़ा देते हैं। गौरांग महाप्रभु जिस पथ से निकलते थे, प्रेम का प्रवाह बहा देते थे। गोस्वामी जी की लेखनी में कितना अमृत भरा पड़ा है। पर ऐसे प्रेमी सन्तों के दर्शन भी प्रभु की पूर्ण कृपा से होते हैं। प्रभु की कृपा तो सब पर पूर्ण है ही, किन्तु पात्र बिना वह कृपा फलवती नहीं होती। शरणागत भक्त ही प्रभु की ऐसी कृपा के पात्र हैं। अतएव हमें सर्वतोभाव से भगवान् के शरण होना चाहिए।

– ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

From truth to higher truth have I grown; so do I expect others to do. The Sadhaka as he goes ahead begins to understand what he could not in the beginning. To force agreement or belief to my mind is unspiritual. It is to stop him from growing in the mental world.

(from As I Understand - Sadhana)

प्रभु-पद-रत भव-बिरत नित बन्दौं भक्त उदार

(‘कल्याण’ पत्रिका से उद्धृत)

(1) भक्त महेश मण्डल

देश भर में अकाल पड़ा है, चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है, पूर्व बंगाल में अकाल का विशेष प्रकोप है। लोग भूख के मारे मरे जा रहे हैं। इसी समय की घटना है। महेश मण्डल जाति का था **नमः-शूद्र – चाण्डाल**। दिन भर मजदूरी करके कुछ पैसे लाता, उसीसे अपना तथा अपनी स्त्री, पुत्र, कन्या – चारों का पेट भरता। ज़र-ज़मीन कुछ भी नहीं था। महेश भगवती दुर्गा का भक्त था, दिन-रात ‘दुर्गा’, ‘दुर्गा’ रटा करता। माँ दुर्गा पर बड़ा विश्वास था उसका। कितना ही दुःख आये, कैसी ही विपत्ति पड़े, कुछ भी हो, ‘दुर्गा’ नाम महेश कभी नहीं भूलता था।

देश भर में दुर्भिक्ष था, ऐसे समय काम कहाँ मिलता। महेश का परिवार आधे पेट तो रहता ही था, किसी-किसी दिन सबको पूरा अनशन करना पड़ता। आज दो दिन का उपवास था, महेश ने बड़ी मुश्किल से छः आने पैसे कमाये। बाज़ार से दो सेर चावल खरीदे और पार जाने के लिये नदी पर पहुँचा। नदी के घाट पर खेपू महाराज दिखायी दिये।

खेपू गाँव के ज्योतिषी थे। इधर-उधर घूम-फिर कर पंचांग का फल बतलाते, किसी की जन्मकुण्डली देख देते। दुर्गा पूजा के समय मूर्ति आदि चित्रित कर देते। इसी तरह जो कुछ मिलता, वही काम करके दो-चार पैसे कमा लेते। न मजदूरी कर सकते न कोई और बँधी आमदनी थी। देश में अकाल के मारे हाहाकार मचा था। ऐसे समय में इस तरह के आदमी को कौन पैसे देता है। खेपू उदास मुँह घाट पर खड़े थे। उसी समय महेश से उनकी मुलाकात हुई। महेश ने ब्राह्मण का चेहरा उतरा हुआ देखकर पूछा कि ‘घर में सब कुशल तो है?’ खेपू ने जवाब दिया – ‘क्या बताऊँ?’ माँ दुर्गा ने मेरे नसीब में कुछ लिखा ही नहीं। कहीं भीख नहीं मिली। तीन दिन से घर में किसी ने कुछ नहीं खाया। आज घर जाने पर सभी लोग मरणासन्न ही मिलेंगे। इसी चिन्ता में डूब रहा हूँ।’ महेश ने कहा – ‘विपत्ति में माँ दुर्गा के सिवा और कौन रक्षा करने वाला है। वही खाने को देती है और वही नहीं देती। हमारा तो काम है – बस, माँ के आगे रोना। उनके आगे पुकार कर रोने से ज़रूर भीख मिलेगी।’ खेपू ने कहा – ‘भाई! अब यह विश्वास नहीं रहा। देखते हो – दुःख के सागर में डूब-उतर रहा हूँ। बस, प्राण निकलना ही चाहते हैं। बताओ, कैसे विश्वास करूँ?’

माँ दुर्गा की निन्दा सुनकर महेश की आँखों में पानी भर आया। महेश ने कहा – ‘लो न, माँ दुर्गा ने तुम्हारी भीख मेरे हाथ भेजी है। तुम रोओ मत।’ चावल-दाल सब खेपू को देकर महेश हँसता हुआ घर को चला। खेपू को अन्न देकर महेश मानो अपने को कृतार्थ मान रहा था। उसने सोचा – ‘आज एकादशी है। जीवन में कभी एकादशी का व्रत नहीं किया। कल दशमी थी। कुछ खाया नहीं। आज उपवास हो गया, इससे व्रत का नियम पूरा सध गया। अब भगवान् देंगे तो कल द्वादशी का पारण हो ही जायेगा। एक दिन न खाने से मर थोड़े ही जायँगे।’

इस प्रकार सोचता-विचारता महेश घर पहुँचा। महेश को देखते ही स्त्री ने सामने आकर कहा – ‘जल्दी चावल दो तो भात बना दूँ। बच्चा शायद आज नहीं बचेगा। बड़ी देर से भूख के मारे बेहोश पड़ा है। मुझे चावल दो, मैं चूल्हे पर चढ़ाऊँ और तुम जाकर बच्चे को सँभालो।’ महेश

ने कहा – 'माँ दुर्गा का नाम लेकर बच्चे के मुँह में जल डाल दो। माँ की दया से यह जल ही उसके लिये अमृत हो जायेगा। खेपू महाराज के बच्चे तीन दिन से भूखे हैं। आज खाने को न मिलता तो मर ही जाते। मैं दो सेर चावल लाया था, सब उनको दे आया हूँ।' महेश की स्त्री ने कहा – 'ब्राह्मण-परिवार के प्राण बच गये सो तो बड़ा ही अच्छा हुआ। पर आधा उनको देकर आधा ले आते तो बच्चों को दो कौर भात दे देती। तीन वर्ष का बच्चा दो दिन से बिना खाये बेहोश पड़ा है। अब क्या होगा? माँ दुर्गा ही जाने।'

महेश ने कहा – 'यदि माँ काली बचायेगी तो कौन मारने वाला है, अवश्य ही बच जायेगा। और यदि समय पूरा ही हो गया है तो प्राणों का वियोग होना ठीक ही है। खेपू का सारा परिवार तीन दिनों से भूखा है। पहले वह बचे। हमारे भाग्य में जो कुछ बदा है, हो ही जायगा।'

इसी का नाम त्याग है। एक करोड़पति अपने करोड़ रुपयों में से नाम के लिये लाख रुपये दान दे दे तो इसमें कोई त्याग नहीं। न उसको देने में कोई कष्ट हुआ और न वह बदला पाने से वंचित ही रहा। अखबारों में नाम छप गया, सरकार से उपाधि मिल गयी और कोठी की साख ज्यादा बढ़ गयी। त्याग तो वह है कि जिसमें कुछ कष्ट उठाना पड़ता है; इसीलिये उसका महत्त्व है। इसीलिये शास्त्रों में उस आधे ग्रास का महान् फल बतलाया है, जो अपने एकमात्र मुँह के ग्रास में से दिया जाता है। उसके सामने लाखों-करोड़ों का दान कोई महत्त्व नहीं रखता। महेश का त्याग तो बहुत ही ऊँचा है। उसने अपने मुँह का आधा ग्रास ही नहीं दिया, सारा ही नहीं दिया; उसने जो कुछ दिया, वह बहुत ही बढ़कर दिया। अपना शिशु पुत्र दो दिन से भूखा है – भूख के मारे बेहोश पड़ा है – उसके मुख का दाना महेश ने खेपू के उन बच्चों की जान बचाने के लिये दे दिया, जो तीन दिन के भूखे हैं। महेश ने सोचा 'मेरा बच्चा दो दिन का भूखा है' परन्तु वे तो तीन दिन के भूखे हैं, पहले उनको मिलना चाहिए।' अपने बच्चे के दु:ख की अपेक्षा महेश खेपू के बच्चों के लिये अधिक दु:खी है। यह भी नहीं कि महेश ने किसी दबाव में पड़कर अप्रसन्नता या विषाद के साथ चावल दिये हों। उसने हँसते चेहरे से दिये, हँसता हुआ ही वह घर आया और अपने बच्चे को मौत के मुँह में देखकर भी अपनी कृति पर होने वाली उसकी प्रसन्नता घटी नहीं। धन्य!

(2)

जिस का भगवान् पर विश्वास होता है, जो भगवान् के नाम पर त्याग करना जानता है, जो दु:ख और विपत्तियों में भी उन्हें भगवान् का आशीर्वाद मानकर – अपने मंगल की चीज मानकर भगवान् का कृतज्ञ होता है, जो भगवान् की दी हुई बुरी-से-बुरी और दु:ख से भरी दिखने वाली स्थिति में भी भगवान् के मंगलमुख की हास्य-छटा को देखकर हँसता है, कोई भी दु:ख-भार भगवान् के विश्वास के मार्ग से जिसको नहीं डिगा सकता, जो हर हालत में हँसता हुआ भगवान् की हरेक देन पर सच्चे दिल से खुशी मनाता हुआ भगवान् के नाम को पुकारता रहता है – भगवान् उसके योग-क्षेम का वहन स्वयं करते हैं। उसका सारा भार अपने सिर उठा लेते हैं। यह सत्य है – ध्रुव सत्य है! हम अभागे मनुष्य विश्वास की कमी से ही दु:ख-पर-दु:ख उठाते हैं और भगवान् की बरसती हुई कृपा-धारा से वंचित रह जाते हैं। अस्तु,

महेश के पड़ोस में गोपाल भौमिक नामक एक मध्यवित्त गृहस्थ रहते थे। घर के बीच में पक्की दीवाल नहीं थी। महेश और उसकी स्त्री में जो बातचीत हुई, उसे सुनकर गोपाल और उनकी पत्नी

दोनों चकित हो गये। गोपाल ने अपनी पत्नी से कहा – 'मालूम होता है यह तो साक्षात् महेश ही है। भला, इतना त्याग कौन मनुष्य कर सकता है। जैसा महेश, ठीक वैसी उसकी स्त्री! मरणासन्न बच्चे को देखकर भी न तो वह पति पर नाराज़ ही हुई और न उसके मुँह से एक कड़ा शब्द ही निकला। हमारे घर रसोई तैयार है। चलो, ले चलें और उन भक्त स्त्री-पुरुष की सेवा करके अपने जीवन को धन्य बनायें।'

दाल, भात और तरकारी की हाँडियों को लेकर गोपाल की स्त्री उमा अपने पति के साथ महेश की झोंपड़ी में पहुँची। गोपाल के हाथ में दूध का कटोरा और तीन-चार दर्जन केले थे। इतनी चीजों को लेकर जब वे महेश के सामने पहुँचे, तब महेश उन्हें देखकर विस्मित हो गया और उसने आश्चर्य से कहा – 'यह क्यों! मैंने तो आपसे कुछ चाहा नहीं था। बिना ही कारण इस नराधम को आप इतनी चीजें क्यों देने आये हैं?'

गोपाल ने सजल नेत्रों से कहा – 'नराधम कौन है? हम लोग तो परम श्रद्धा के साथ साक्षात् महेश को भोग लगाने आये हैं। हमें इस सेवा का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, इसमें भी आपका संग ही कारण है। मैं आप का पड़ोसी हूँ।'

महेश बोला – 'यह भोजन किसी सत्पात्र को दीजिये, आपको पुण्य होगा।' गोपाल ने आँखों में आँसू भरकर कुछ जोश के साथ कहा – ''माँ दुर्गा का नाम लेकर मैं ये चीजें लाया हूँ। आप लौटा देंगे तो समझूँगा कि 'दुर्गा' के नाम का कोई फल नहीं है, 'दुर्गा' नाम मिथ्या है।''

दुर्गा के नाम का मिथ्या होना महेश के लिये असह्य था। अब उससे नहीं रहा गया और वह बड़े जोर से 'दुर्गा', 'दुर्गा' पुकारता हुआ अपने स्त्री-बच्चों को साथ लेकर खाने बैठ गया। गोपाल और उनकी स्त्री सामने बैठकर बड़े आदर के साथ भोजन परोसने लगे। महेश ने दुर्गा मैय्या का प्रसाद पाते-पाते कहा – 'आज बड़े भाग्य से खेपू महाराज मिले थे। वे न मिलते तो सिर्फ चावल ही खाकर रहना पड़ता। आज तो स्वयं माँ अन्नपूर्णा यह प्रसाद लाकर खिला रही हैं। मुझे आज अन्नपूर्णा के दर्शन हो गये। माँ अन्नपूर्णा अपने हाथों से मुझे इस प्रकार दूध-भात खिलाना चाहती थीं, इसीलिये तो उन्होंने मुझे ऐसी बुद्धि दी कि मैं खेपू को सब चावल दे आया।'

(3)

महेश भीख माँगकर जीवन निर्वाह करता था और उसी से अतिथियों की सेवा भी। महेश के सीधेपन का लोग अनुचित लाभ उठाते। दिन भर काम करवा कर बहुत थोड़ी मजदूरी देते। महेश कुछ नहीं बोलता। कोई किसी भी समय किसी भी काम के लिये महेश को बुलाता तो महेश 'माँ दुर्गा' की सेवा समझकर तुरन्त जाकर उसके काम को कर देता। 'दुर्गा' का नाम तो उसकी जीभ से कभी उतरता ही नहीं था। माँ भी सदा उसकी सँभाल रखती और उसके निर्वाह योग्य पैसे उसे मिल ही जाते।

वैशाख का अन्तिम दिन था। सन्ध्या के समय महेश की नन्ही-सी मढ़ैया पर एक ब्राह्मण गोस्वामी अतिथि के रूप में पधारे। ब्राह्मण का रूप कच्चे सोने-सा सुन्दर था। उनकी देह से ज्योति निकल रही थी। महेश उस समय घर पर नहीं था। महेश की स्त्री ने पड़ोसी गोपाल भौमिक के घर कहलवाया। गाँव के बहुत-से लोग आ गये और उन्होंने अतिथि ब्राह्मण को गोपाल के घर के अलावा और कहीं टिकने के लिये प्रार्थना की और कहा कि 'महेश बड़ा गरीब है। इसके घर जगह नहीं है। यहाँ आपको कच्चे आँगन में सोना पड़ेगा, कष्ट होगा; इससे कृपा करके हमारे साथ चलिये।'

ब्राह्मण देवता ने कहा – 'मैं तो यहीं आया हूँ। घर के मालिक जो दे सकेंगे, वही ले लूँगा, पर किसी धनी के घर नहीं जाऊँगा।'

ब्राह्मण को किसी तरह राज़ी न होते देख लोग तरह-तरह की बातें कहने लगे। किसी ने कहा कि 'यह ब्राह्मण नहीं है।' कोई बोला – 'चाण्डालों का ब्राह्मण होगा।' किसी ने कहा – 'ब्राह्मणों और कायस्थों के घर छोड़कर यह चाण्डाल के घर ठहरा है, इसी से इसकी प्रवृत्ति का पता लग जाता है।' सब लोग यों कोसते हुए चले गये।

इसी समय महेश आ पहुँचा, उसने भक्ति-भाव से अतिथि का आदर किया, उन्हें प्रणाम किया। महेश के घर तो कुछ था ही नहीं। वह अतिथि की सेवा के लिये पड़ोसियों के यहाँ कुछ माँगने गया। पड़ोसी तो पहले से ही तने बैठे थे। किसी ने कुछ नहीं दिया; कहा कि 'उन्हें यहाँ लाओ तो देंगे।' बेचारा महेश उपाय न देखकर मधुखालि नामक गाँव में गया। वहाँ चन्द्रनाथ साहा नामक एक बड़ा दुकानदार महेश का भक्त था। महेश के मुँह से अतिथि के आने की बात सुनकर उसने लगभग बीस आदमियों के सिरों पर लादकर महेश के साथ खाने का बहुत-सा सामान भेज दिया और खुद भी वह उसके साथ चल दिया।

गोस्वामी महोदय श्रीमद्भागवत् की व्याख्या करने लगे। व्याख्या बड़ी सुन्दर थी। पाण्डित्य तो था ही, उसमें से भगवान् के प्रेम-रस की धारा बह रही थी। यह देखकर, जिन लोगों ने पहले गालियाँ दी थीं, वे ही आ-आकर चरणों में पड़ने और क्षमा चाहने लगे। कथा-समाप्ति के बाद रात के दूसरे पहर भगवान् को भोग लगाकर गोस्वामी जी ने स्वयं भोजन किया और सबको प्रसाद दिया। इसी आनन्द में सबेरा हो चला। इतने में देखते हैं कि गोस्वामी महाराज का कहीं पता नहीं है। लोगों ने उन्हें बहुत खोजा, पर वे कहीं नहीं मिले। तब यह निश्चय हो गया कि महेश पर कृपा करके स्वयं भगवान् ही गोस्वामी के रूप में पधारे थे।

माघी पूर्णिमा का दिन था। गोपाल के घर कीर्तन हो रहा था। इसी बीच महेश वहाँ पहुँचा और आनन्द के आँसू बहाता हुआ वहाँ नाच-नाचकर बड़े जोरों से भगवान् के नाम का कीर्तन करने लगा। उसका सारा शरीर पुलकित हो रहा था। चन्द्रनाथ साहा धन्य-धन्य करने लगा। तीन वेश्याओं ने आकर महेश की चरणधूलि सिर चढ़ायी!

महेश कहने लगा – 'देखो न, ये निताई-निमाई दोनों भाई कीर्तन के आँगन में खड़े हैं! ये रहे राधा-कृष्ण। ये शिव-दुर्गा खड़े हैं! बस आज ही तो मरने लायक सुदिन है।' महेश ने अपनी स्त्री से कहा – 'कुदाल लाकर गड्ढा खोदो और उसमें जल छिड़क दो।' स्त्री ने यही किया। महेश ने गड्ढे में सोकर कहा – 'दुर्गा-नाम सुनाओ!' चारों ओर शोर मच गया। लोग इकट्ठे हो गये। लोगों ने देखा महेश की आँखों में आँसू हैं, शरीर पर रोमांच है, मुँह से 'दुर्गा' नाम की ध्वनि हो रही है और वह मन्द-मन्द मुस्करा रहा है। सब लोग उसे घेर कर कीर्तन करने लगे। यों नाम सुनते-सुनते महेश ने महाप्रस्थान किया। कलिकाल में भी दुर्लभ इच्छा-मृत्यु हुई!

Higher life and love should emanate from you as fragrance does from a flower. The bees are automatically drawn if there is anything worth-while therein.

(from As I Understand - Sadhana)

जो चाहौ हरि मिलन कौ

('कल्याण' पत्रिका से उद्धृत)

संसार के विषयों में न मालूम कैसी मोहिनी है, देखते और सुनते ही मन ललचाता है, उनकी प्राप्ति के लिये अनेक उचित-अनुचित उपाय किये जाते हैं, मनुष्य मोहवश मन-ही-मन सोचता है कि इनकी प्राप्ति से सुख हो जायेगा, परन्तु उसका विचार कभी सफल होता ही नहीं। कितने ही लोगों के जीवन तो अभीष्ट विषय की प्राप्ति होने के पूर्व ही पूरे हो जाते हैं। सारा जीवन विषय-सुख के लोभ में अनन्त प्रकार की मानसिक और शारीरिक विपत्तियों को सहन करते-करते ही चला जाता है। किसी को कोई मनचाही वस्तु मिलती है, तब एक बार तो उसे कुछ सुख-सा प्रतीत होता है, परन्तु दूसरे ही क्षण नयी कामना उत्पन्न होकर उसके चित्त को हिला देती है और फिर तुरन्त ही वह अशान्त और व्याकुल होकर उसको पूरी करने की चेष्टा में लग जाता है। वह पूरी होती है तो फिर तीसरी उदय हो जाती है। सारांश यह है कि कामनाओं का तार कभी टूटता ही नहीं, वह बराबर बढ़ता चला जाता है। इसका कारण यह है कि संसार का कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जो पूर्ण और सारे अभावों को सदा-सर्वदा मिटा देने वाला हो और जब तक अभाव का अनुभव है, तब तक सुख की प्राप्ति असम्भव है।

सारा संसार इसी अभाव के फेर में पड़ा हुआ है। अच्छे-अच्छे विद्वान्, बुद्धिमान् और चिन्तनशील पुरुष इस अभाव की पूर्ति के लिये ही चिन्तामग्न हैं। युग बीत गये, नाना प्रकार के नवीन-नवीन औपाधिक आविष्कार हुए और रोज-रोज हो रहे हैं; परन्तु यह अभाव ऐसा अनन्त है कि इसका कभी शेष होता ही नहीं। बड़ी कठिनता से, बड़े पुरुषार्थ से, बड़े भारी त्याग और अध्ययन से मनुष्य एक अभाव को मिटाता है, तत्काल ही दूसरा अभाव हृदय में न मालूम कहाँ से आकर प्रकट हो जाता है। यों एक-एक अभाव को दूर करने में केवल एक ही जीवन नहीं, न मालूम कितने जन्म बीत गये हैं, बीत रहे हैं और अभाव की जड़ न कटने तक बीतते ही रहेंगे। कलमी पेड़ की डालों को काटने से वह और भी अधिक फैलता है, इसी प्रकार एक विषय की कामना पूरी होते ही – उसके कटते ही न मालूम कितनी ही नयी कामनायें और जाग उठती हैं। किसी कंगाल को राज्य पाने की कामना है, वह उसकी प्राप्ति के लिये न मालूम कितने जप, तप, विद्या, बुद्धि, बल, परिश्रम आदि का प्रयोग करता है। उसे कर्म की सफलता के रूप में यदि राज्य मिल जाता है, तो राज्य मिलते ही अनेक प्रकार की ऐसी आवश्यकतायें उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका वह पहले विचार भी नहीं कर सका था अब उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति की कामना होती है और वह फिर वैसा ही दुखी बन जाता है।

इसलिये आवश्यकता है अभाव की जड़ काटकर ऐसी वस्तु को प्राप्त करने की, जो नित्य, पूर्ण, सत् और सर्वाभावशून्य हो, जिसे पाकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता हो, आप्तकाम और पूर्णकाम हो जाता हो, अभाव की आग सदा के लिये बुझ जाती हो। यह सत् और पूर्ण वस्तु केवल परमात्मा है, परन्तु उस परमात्मा की प्राप्ति तब तक नहीं होती, जब तक जगत् के विषयों का मोह त्याग कर मनुष्य परमात्मा को पाने के लिये एकान्त इच्छुक नहीं हो जाता। जो इस परम वस्तु को पाने के लिये व्याकुल हो उठता है, उस के हृदय से भोगों की शक्ति नष्ट हो ही जाती है; क्योंकि जहाँ भगवान् का प्रेम रहता है, वहाँ भोग-कामना उसी प्रकार नहीं ठहर सकती, जिस प्रकार सूर्य के सामने अन्धकार नहीं ठहरता।

जो चाहौ हरि मिलन कौ, तजौ विषय विष मान।
हिय में बसै एक सँग, भोग और भगवान॥

जिन्हें भगवान् के मिलन की चाह है, उन्हें और समस्त इच्छाओं की जड़ बिलकुल काट डालनी पड़ेगी। परन्तु वह जड़ बड़ी मजबूत है, केवल बातों से उसका कटना सम्भव नहीं, उसके काटने के लिये वैराग्यरूपी दृढ़ शस्त्र की आवश्यकता है। विषय-वैराग्य हुए बिना कामना का नाश नहीं होता। इसके लिये बड़े ही प्रयत्न की आवश्यकता है। तनिक से प्रयत्न में घबरा जाने से काम नहीं चलेगा। जब संसार के साधारण नाशवान् पदार्थों को पाने के लिये मनुष्य को बहुत से त्याग करने पड़ते हैं, तब अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति के लिये तो विनाशी वस्तुमात्र का त्याग कर देना आवश्यक है ही। ऐसा कौन-सा कष्ट है जो अपने इस परम ध्येय की प्राप्ति के लिये मनुष्य को नहीं सहना चाहिए। जो थोड़े में ही घबरा उठते हैं, उनके लिये इस पथ का पथिक बनना असम्भव है। यहाँ तो तन-मन और लोक-परलोक की बाजी लगा देनी पड़ती है। सब कुछ न्योछावर कर देना पड़ता है उस प्रेमी के चारु चरणों पर!

– नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

❖ ❖ ❖

राम नाम की महिमा

(विनय पत्रिका - पद संख्या 67)

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे ॥1॥
राम सुमिरन सब बिधि हो को राज रे।
राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे ॥2॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे ॥3॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित पुरारि रे ॥4॥
राम-नाम प्रेम-परमारथ को सार रे।
राम-नाम तुलसी को जीवन अधार रे ॥5॥

भावार्थ – हे जीव! सदा अनन्य प्रेम से श्री राम नाम जपा कर, इस कलिकाल में राम नाम के सिवा वैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दान से कुछ भी नहीं हो सकता ।।1।।

शास्त्रों में विधि निषेध रूप से कर्म बतलाये हैं, मेरी सम्मति में श्री राम नाम का स्मरण करना ही सारी विधियों में राज-विधि है और श्री राम नाम को भूल जाना ही सबसे बढ़कर निषिद्ध कर्म है ।।2।।

रामनाम महामणि है और यह जगत का जाल साँप है, जैसे मणि ले लेने से साँप व्याकुल होकर मर-सा जाता है, इसी प्रकार राम नाम रूपी मणि ले लेने से दु:ख रूप जगत्-जाल आप ही नष्ट प्राय हो जायेगा ।।3।।

अरे! यह राम-नाम कल्पवृक्ष है, यह अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों फल देता है, इस बात को वेद, पुराण, पण्डित और शिव जी महाराज भी कहते हैं ।।4।।

श्री राम नाम प्रेम और परमार्थ अर्थात् भक्ति-मुक्ति दोनों का सार है और यह राम नाम इस तुलसीदास के तो जीवन का आधार ही है ।।5।।

शोक समाचार

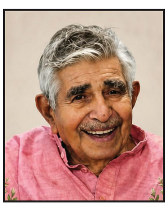

पूज्य गुरुदेव को पूर्ण समर्पित वरिष्ठ साधक श्री केवल कृष्ण नैय्यर जी का 3 मई 2026 को देहावसान हो गया है। पूज्य गुरुदेव से विनती है कि इस पवित्र आत्मा को अपने चरण कमल में स्थान प्रदान करें तथा परिवार के सभी लोगों को धैर्य और शान्ति प्रदान करें।

16.02.26 से 20.05.26 तक के 2100/- से ऊपर दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं। भुगतान को और सुविधाजनक बनाने हेतु बैंक ऑफ़ इंडिया का QR Code भी दिया जा रहा है।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
BANK OF INDIA,
Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
HDFC BANK,
Bhoopatwala, Saptrishi Chungi, Haridwar
A/c No.: 50100537193693
I.F.S. Code: HDFC0005481

साधना धाम का PAN नम्बर AAKAS8917M है।

जो दानदाता उपरोक्त बैंक खातों में से किसी में भी सीधे जमा करते हैं वे कृपया अपना नाम, पता, आधार कार्ड व PAN CARD का PDF निम्नलिखित नम्बरों में से किसी एक पर अवश्य प्रेषित करें –

1. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री - 9690187900   2. श्री रवि कान्त भण्डारी - 9872574514

– रवि कान्त भण्डारी, प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 09872574514, 08273494285

1.	सुशीला देवी चैरिटेबल ट्रस्ट, नोएडा	3,00,000
2.	गुरुजी महाराज, गुरुग्राम	1,09,800
3.	सतीश खोसला, दिल्ली	78,000
4.	सरोज भल्ला, नई दिल्ली	51,000
5.	विशन स्वरूप भण्डारी, दिल्ली	21,000
6.	हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	20,100
7.	आशा गुलाटी	20,000
8.	कानपुर सत्संग, कानपुर	20,000
9.	राकेश अग्रवाल, दिल्ली	15,100
10.	रोहिणी भांबरी त्रेहन, चण्डीगढ़	12,000
11.	अंशुल मित्तल, बीसलपुर	11,000
12.	शिवम अग्रवाल, फरीदाबाद	10,200
13.	सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	10,200
14.	अविष्कार महरोत्रा, गुरुग्राम	10,000
15.	रुक्मणी देवी, दिल्ली	10,000
16.	विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	9,101
17.	राजेश गुप्ता, नई दिल्ली	7,500
18.	वीरेन्द्र मोहन	5,500
19.	अनिल चन्द मित्तल, बीसलपुर	5,100
20.	अंकित-स्वाति, दिल्ली	5,100
21.	डा. आकांक्षा अग्रवाल, मेरठ	5,100
22.	हरिओम गोयल, लुधियाना	5,100
23.	महेश चन्द, बरेली	5,100
24.	नन्द कुमार गुप्ता, बीसलपुर	5,100
25.	प्रीति अग्रवाल, पीलीभीत	5,100
26.	राम प्रताप सिंह-गौरव प्रताप सिंह, मेरठ	5,100
27.	सुभाष बाबू, बिजनौर	5,100
28.	उषा खण्डेलवाल, बरेली	5,100
29.	निशीथ शर्मा, बरेली	5,000
30.	रवि भण्डारी, लुधियाना	5,000
31.	रीवा भांबरी, नोएडा	5,000
32.	वैभव माहेश्वरी, मुम्बई	5,000
33.	योगेन्द्र प्रताप सिंह, शोहरतगढ़	5,000
34.	अविनाश मिश्रा, बरेली	4,200
35.	नीता सहगल, नई दिल्ली	4,200
36.	सूरजभान सक्सेना, कानपुर	4,200
37.	सुरेंद्र अग्रवाल-राधा अग्रवाल, बीसलपुर	3,500
38.	अजय आनन्द, गाजियाबाद	3,100
39.	अजय कुमार भण्डारी, अमृतसर	3,100
40.	अर्पित कुमार मित्तल, आगरा	3,100

(16.02.2026 से 20.05.2026 तक के दानदाताओं की सूची पिछले पृष्ठ से ...)

41. आशा अग्रवाल, नोएडा	3,100	57. मनोज कुमार गुप्ता, कानपुर	2,100
42. मधु खुल्लर, गुरूग्राम	3,100	58. मिश्रा परिवार-अविनाश मिश्रा, सेंथल	2,100
43. श्रीकान्त मिश्रा, फरुखाबाद	3,100	59. प्राचार्य एसएमजेएन डिग्री कॉलेज, हरिद्वार	2,100
44. अनिल कुमार गुप्ता, हरिद्वार	2,500	60. प्रमोद कुमार, मुजफ्फरनगर	2,100
45. गीता अग्रवाल, बरेली	2,500	61. प्रतीक दीक्षित, नोएडा	2,100
46. सावित्री देवी, गाजियाबाद	2,500	62. प्रेम लता, कानपुर	2,100
47. सुशीला जयसवाल, मुम्बई	2,500	63. पुनित कुमार शुक्ला, कानपुर	2,100
48. आदेश कुमार, बरेली	2,100	64. राजेश कुमार, बीसलपुर	2,100
49. अक्षित, मुरादाबाद	2,100	65. रमा अग्रवाल, श्रीनगर (गढ़वाल)	2,100
50. चैतन्य कक्कड़, दिल्ली	2,100	66. संजीव चौहान, बिजनौर	2,100
51. चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	2,100	67. श्रवण कुमार, बीसलपुर	2,100
52. दीपा शुक्ला, कानपुर	2,100	68. श्रीकान्त मिश्रा, दिल्ली	2,100
53. दीपक दीक्षित-विनीता दीक्षित, कानपुर	2,100	69. सुभाष टण्डन, लखनऊ	2,100
54. दिनेश अग्रवाल, बीसलपुर	2,100	70. विजय कंसल, बरेली	2,100
55. हरि नारायण अरोरा-नताशा अरोरा इंड.	2,100	71. गुप्तदान	1,40,344
56. माँ वैष्णो यात्रा मण्डल, दिल्ली	2,100		

शुभ समाचार

कानपुर निवासी श्री दीपक दीक्षित व श्रीमती विनीता दीक्षित की सुपुत्री वारुनी का शुभ विवाह चि. उत्कर्ष दीक्षित के साथ दिनांक 11 मार्च 2026 को सम्पन्न हुआ।

श्रीमद्भागवत कथा

(30 जुलाई से 5 अगस्त 2026 तक)

कथा-वाचक – **पूज्य भागवताचार्य सुशील मिश्र जी**

कथा स्थल – स्वामी रामानन्द साधना धाम, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार

समय – प्रातः 09:00 से 12:00 बजे तक
अपराह्न 3:00 से 6:00 बजे तक

आप सभी से अनुरोध है कि श्रीमद्भागवत कथा का रसास्वादन करके अपना जीवन सफल बनायें।

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, दिगोली

(26 जुलाई से 30 जुलाई 2026 तक)

शिविर स्थानः

दिगोली तपस्थली, ग्राम दिगोली, जिला बागेश्वर (उत्तराखण्ड)

दिगोली तपस्थली पर गुरु पूर्णिमा साधना शिविर 26 जुलाई 2026 को आरम्भ होगा और समापन 30 जुलाई 2026 को होगा।

तपस्थली के साधक अपने आगमन की **पूर्व सूचना** श्री विष्णु कुमार गोयल (बीसलपुर) मोबाइल नम्बर 9456083610 अथवा श्री अजय अग्रवाल (बरेली) मोबाइल नम्बर 7451930602 पर अवश्य दे दें।

।।राम राम जी।।

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, हरिद्वार

(24 जुलाई से 29 जुलाई 2026 तक)

शिविर स्थानः

स्वामी रामानन्द साधना धाम, संन्यास रोड, कनखल (उत्तराखण्ड)

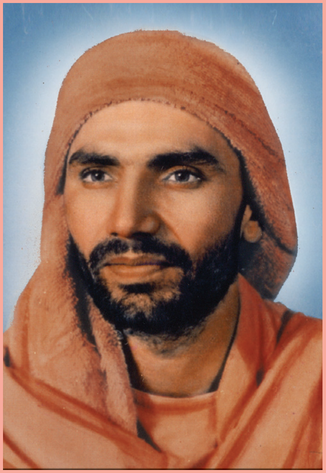

24 जुलाई 2026 को गुरु पूर्णिमा का शिविर आरम्भ होगा।

27 जुलाई की सन्ध्या से 29 जुलाई की प्रातः तक 36 घण्टे का अखण्ड जाप होगा। 29 जुलाई को गुरु पूर्णिमा हर्षोल्लास के साथ मनाई जायेगी।

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक 28 जुलाई 2026 को प्रातः 10:30 बजे साधना धाम के कार्यालय में होगी।

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर में भाग लेने वाले साधक कृपया अपने आने की **पूर्व सूचना** श्री विष्णु कुमार गोयल (बीसलपुर) मोबाइल नम्बर 9456083610 अथवा प्रबन्धक साधना धाम मोबाइल नम्बर 8273494285, 01334-311821 पर अवश्य देने का कष्ट करें।

श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य

1. अध्यात्म विकास	
2. आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)	इन पुस्तकों में श्री स्वामी जी ने अपनी विकासवादी नवीनतम साधना
3. आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)	पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है।
4. Evolutionary Outlook on Life	
5. Evolutionary Spiritualism	
6. जीवन-रहस्य तथा उत्पादिनी शक्ति	काम शक्ति तथा अध्यात्म विषय पर स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
7. गीता विमर्श	श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 1-7 की स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
8. व्यावहारिक साधना	पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखित तीन लेखों – (1) साधकों के लिये, (2) दम्पत्ति के लिये, (3) माता-पिता के प्रति का संकलन
9. कैलाश-दर्शन	पूज्य स्वामी जी ने कुछ साधकों के साथ कैलाश-पर्वत की यात्रा व परिक्रमा की थी। उस यात्रा एवं उनकी आत्मानुभूति का विशद् वर्णन
10. गीतोपनिषद	श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 8-18 की स्वर्गीय श्री के.सी. नैयर जी द्वारा व्याख्या
11. हमारी साधना	
12. हमारी उपासना	
13. साधना और व्यवहार	
14. अशान्ति में	श्री पुरुषोत्तम भटनागर द्वारा सम्पादित
15. मेरे विचार	
16. As I Understand	
17. My Pilgrimage to Kailash	
18. Sex and Spirituality	जीवन-रहस्य
19. Our Worship	हमारी साधना (प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना द्वारा
20. Our Spiritual Sadhana Part-I	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड) अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें)
21. Our Spiritual Sadhana Part-II	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)
22. स्वामी रामानन्द – एक आध्यात्मिक यात्रा	स्वस्पष्ट प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना
23. पत्र-पीयूष	कु. शीला गौहरी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के पत्रों का संकलन
24. स्वामी रामानन्द-चरित सुधा	स्व. डा. कविराज नरेन्द्र कुमार एवं वैद्य श्री सत्यदेव
25. स्वामी रामानन्द-वचनामृत	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी द्वारा गुरुदेव की पुस्तकों से संकलन
26. मेरी दक्षिण भारत-यात्रा	पूज्य सुमित्रा माँ जी द्वारा दक्षिण भारत यात्रा का रोचक वर्णन
27. पत्तियाँ और फूल	भजन, पद, कीर्तन, आरती आदि का संकलन
28. दैनिक आवाहन विधि	स्वामी जी की साधना प्रणाली पर आधारित – श्रीमती महेश प्रकाश
29. Letters to Seekers	कु. शीला गौहरी एवं श्री विजय भण्डारी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के अंग्रेजी पत्रों का संकलन
30. आत्मा की ओर	
31. जीवन विकास – एक दृष्टि	Evolutionary Outlook on Life का हिन्दी अनुवाद
32. विकासात्मक अध्यात्म	Evolutionary Spiritualism का हिन्दी अनुवाद
33. गुरु के प्रति निष्ठा	तेजेन्द्र प्रताप सिंह
34. माँ की विभूति – भक्ति रस (भाग 1 से 5)	अनाम साधिका
35. श्रीराम भजन माला	श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल 'राम सरन'
36. माँ का भाव भरा प्रसाद गुरु का दिव्य प्रसाद	मीरा गुप्ता
37. पत्र-पीयूष सार	पत्र-पीयूष का संग्रहीत संस्करण
38. गीता पाठ	
39. गृहस्थ और साधना	
40. प्रभु दर्शन	
41. प्रभु प्रसाद मिले तो	
42. गीता प्रवेशिका – हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी में गीता का संग्रहीत संस्करण	
43. अध्यात्म विषयक लेख	रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
44. वन्दना, स्तुति, प्रार्थना तथा वैदिक सामान्य ज्ञान	
45. Gita Vimarsh	श्री कृष्ण गोयल द्वारा गीता विमर्श का English Translation